सुधा बीज बोने से पहले, कालकूट पीना होगा ।
पहन मौत का मुकुट, विश्व-हित मानव को जीना होगा ।।

भाग २] मथुरा, २० जौलाई सन् १९४१ [अंक ७

अमर-ज्योति

(रचयिता—श्री० शशिभूषण)।

विहँसो, विकसो, प्रिय ! अमर बनो, मैं अमर-ज्योति-निर्माण करूं ।
तुम मुकुल मुकुल में हास बनो, मैं नव-जीवन बन कर उतरूँ !
यह नहीं स्वप्न या सम्भ्रम है, यह ज्योतित जागृति का क्रम है !
प्रिय, आशा के सुरभित-प्रफुल्ल, अरुणोदय का मधु-आगम है !
तुम गगन-अजिर में नखत भले, मैं तरल-तुहिन-कण बन बिखरूँ !
विहँसो, विकसो, प्रिय, अमर बनो, मैं अमर ज्योति निर्माण करूँ ।
निज भाग्य-लीक विपरीत रहे, जीवन में हार कि जीत रहे !
मेरी वंशी के छिद्रों में, गोतीत क्वणनमय गीत रहे !
तुम विश्व-वेदना में पिघलो, मैं विश्व वेदना पी उभरूँ !
बिहँसो, विकसो, प्रिय, अमर बनो, मैं अमर-ज्योति निर्माण करूँ !
प्रिय, एक हूक मँडराती है, भावना-कुसुम बिखराती है !
प्राणों के स्तर में गोपन से, सुध बन-बन कर छा जाती है ।
तुम नवल-विभा प्रस्तीर्ण करो, मैं नीलम-आभा सा निखरूँ !
बिहँसो, विकसो, प्रिय अमर बनो, मैं अमर ज्योति निर्माण करूँ !

सुधा बीज बोने से पहले, काल कूट पीना होगा
पहिन मौत का मुकट, विश्व-हित मानव को जीना होगा॥

मथुरा, २० जौलाई सन् १९४१

प्रेम और सेवा।

आध्यात्मिक साधनाओं के अनेक मार्ग हैं। विभिन्न मतों के अनुसार अलग अलग साधनाएं प्रचलित हैं। रास्ते प्रथक हैं, पर उनका केन्द्र एक ही है। वे सब सत्यनारायण के निकट ले पहुँचते हैं। आध्यात्मिकता ऊर्ध्व गतिहै। पर्वत पर ऊपर की ओर बढ़ने का निरन्तर प्रयत्न करते रहने वाला जिस प्रकार देर सबेर में एक न एक दिन सर्वोच्च शिखिर पर पहुंच ही जाता है, इसी प्रकार अपनी दृष्टि को अन्तर्मुखी बनाने वाला, सत्य का अवलम्बन ग्रहण करने वाला एक न एक दिन—कठिनाई से या आसानी से परमात्म—सत्ता के निकट पहुँच ही जाता है।

साधनाओं के अलग अलग मार्ग होने पर भी उनमें से कोई एक साधक को चुनना होता है। वह अपने अनुभव या किसी पथ प्रदर्शक की सम्मति से अपने लिये रास्ता चुनता है। एक व्यक्ति कई मार्गों पर एक साथ नहीं चल सकता। सब मार्ग सच्चे होने पर भी रुचि, बुद्धि, सुविधा के अनुसार किसी एक को स्वीकार करना पड़ता है। सब पगडंडियों पर एक साथ चलने का प्रयत्न कोई बुद्धिमान रास्तागीर नहीं करता, इसी प्रकार अन्य साधनाओं से द्वेष न करता हुआ एक जिज्ञासु अपने लिये अपनी स्वतन्त्र साधना चुनता है और यदि उस पर ही दृढ़ता पूर्वक अन्त तक आरूढ़ रहा, तो अपने चरम लक्ष तक पहुंच जाता है।

मार्गों की सरलता और कठिनाइयों के सम्बन्ध में अनुभव भिन्न भिन्न हैं। नाम संकीर्तन से लेकर निर्जल और निराहार साधनाएँ तक हैं। इन सभी साधकों को संतोष मिलता है, परन्तु सरलता और कठिनता का महत्व अपनी अपनी दृष्टि में अलग है। राजयोग से लेकर हठ योग और तन्त्र योग तक की साधना अपनी अपनी रुचि के अनुसार प्रयोग में आती हैं। परन्तु मनुष्य प्राणी की शक्ति कमजोर और स्वभाव कोमल होने के कारण लौकिक और पारलौकिक कार्यों में सरलता ढूंढता है। सरलता, सुविधा एवं सरसता के मार्ग सब को पसन्द होते हैं। आध्यात्मिक साधनाओं की विभिन्नता का यह भी एक कारण है कि जिसे जो मार्ग सरल और सुविधाजनक प्रतीत हुआ है, उसने पिछले मार्गों की अपेक्षा उसी अनुभूत सरल मार्ग का प्रतिपादन किया है।

'अखण्ड ज्योति' कार्यालय में निरन्तर कई कई पत्र ऐसे आते रहते हैं, जिनमें पाठक अपने लिए कोई साधना मार्ग निर्धारित करने के सम्बन्ध में हमारी सम्मति चाहते हैं। इनमें से अलग अलग जिज्ञासुओं को उनकी स्थिति के अनुसार प्रथक प्रथक सम्मति देनी पड़ती है, फिर भी दो साधन ऐसे हैं जो समान रूप से सब के लिए उपयोगी हैं, और बाल वृद्ध, स्त्री पुरुष सभी के लिए इनका पालन करना, सरल, सरस और सुन्दर है। साथ ही फल की दृष्टि से भी यह इतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने कि अन्य कठोर साधन।

'प्रेम' और 'सेवा' यह दो मार्ग ऐसे हैं, जिनको स्वीकार करने मात्र से शान्ति का आविर्भाव होता है। सच पूछा जाय तो मनुष्य जीवन के यह दो नेत्र हैं जिनके द्वारा अज्ञानान्धकार से भरे हुए इस भवसागर में से भी अपना मार्ग ढूँढ लेता है और भ्रम की उलझनों में बिना फँसे ईश्वरीय सत्य

की ओर बढ़ता जाता है। यह दोनों गुण मानस लोक के सूर्य चन्द्र हैं जिनके प्रकाश से दिव्य ज्योति का आविर्भाव होता है। हृदय की यह दो निर्झरिणी हैं, जिनके प्रवाह में जीवन के सारे पाप ताप धुलते रहते हैं। प्रेम और सेवा, आनन्द और शान्ति के दूसरे रूप हैं। जिस हृदय में प्रेम है वहाँ उत्साह, उल्लास आनन्द भरा रहेगा, जहाँ सेवा है, वहाँ शान्ति, सन्तोष और शातलता का स्रोत उमड़ता रहेगा। जिन हृदयों ने प्रेम और सेवा का धर्म स्वीकार कर लिया है वे धन्य हैं। तीनों लोक के भौतिक सुख उनके आनन्द की तुलना नहीं कर सकते

हम जो कुछ चराचर जगत देख रहे हैं यह परमात्मा की पवित्र प्रतिमा है। पाषाण प्रतिमाएँ, भावना के अनुरूप ही फलदायिनी होती हैं, फिर इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि चराचर प्राणियों में संसार के सब पदार्थों में प्रभु का रूप देखें तो वह उनमें दिखाई दे। तत्वतः जीव ईश्वरका ही अंश है। फिर ईश्वर की ऐसी सजीव प्रतिमाओं को सामने छोड़ कर, उसे तलाश करने के लिए और कहाँ भटकना चाहिए ? भावुक भक्तों को दिव्य नेत्रों से जब प्रभु की झाँकी मिल जाती है, वे आनन्द विभोर हो जाते हैं। प्रभु की साक्षात् प्रतिमाओं को यदि हम ईश्वरीय भावनाओं से देखने लगें तो कितना सुख उपलब्ध होगा इसे एक वार अनुभव करके जाना जा सकता है।

संसार को मायाजाल या भवसागर समझोगे तो वह वैसा ही बन कर तुम्हें बाँधने आवेगा। उसके पेट में से भाग कर कहीं नहीं जा सकते. मछलियाँ तालाब में दोष ढूँढें तो अपने चित्त को दुखी करने के अतिरिक्त और क्या लाभ उठा सकेंगी। संसार झूठा नहीं है। हमारी वासना झूठी हैं। स्वार्थ और लोभ झूठा है। प्राणी मात्र को अपना पूज्य समझ कर उनकी सेवा में दत्तचित्त रहें तो ठीक वैसी ही मानसिक अवस्था हो सकती है, जैसी कि किसी निर्जन गुफा में रह कर योगाभ्यास में लीन रहने पर होती है। यह बात व्यवहार में कठिन नहीं है। हम अपना दैनिक कर्तव्य करते हुए प्रेम और सेवा का व्यवहार संपूर्ण प्राणियों के साथ कर सकते हैं। यहाँ एक भ्रम उत्पन्न हो सकता है। मान लीजिये कि कोई दुष्ट स्वभाव का मनुष्य हमारे घर में घुस आता है और चोरी जारी करना चाहता है, ऐसे समय में क्या उसका प्रतिकार न करना चाहिए ?

जिज्ञासुओं को जानना चाहिए कि हर व्यक्ति की मन मर्जी पूरा करना या वह जो कुछ कर रहा है, उसे ही करते रहने देना यह उसकी सेवा नहीं हुई, यह तो उसके साथ शत्रुता करना है। बुरे आचरण करना आत्मा का धर्म नहीं है, यह तो पापों का उस पर आक्रमण है। पापों के ताप को और बढ़ा देना यह प्रेम नहीं हुआ। उसकी सच्ची सेवा उसका पाप हटा देने में है। प्यासा आदमी धूप से परेशान है, उसे गर्मी नहीं शीतल जल देना चाहिए। पापी को उसकी पाप वासनाऐं पूर्ण करके और अधिक तप्त नहीं करना चाहिए; वरन् उसके विकारों को हटा कर निर्मल बनाना चाहिए। इस शुद्धि के कार्य में यदि उसे दण्ड देना पड़े, तो देना ही कर्तव्य है। डाक्टर प्रेम और सेवा की भावना से बीमारों के फोड़े चीरता है। समाज और अपराधी के प्रति प्रेम भावनाऐं रखकर न्यायाधीश दुष्टता का कठोर दण्ड देता है। यह धर्म है। सत्कर्म और सात्विकता की ओर दूसरों को प्रवृत्त करना उनके साथ में सब से बड़ा उपकार करना है, सब से उत्तम प्रेम और सेवा से भरा हुआ कार्य है।

जहाँ दुष्टों की दुष्टता छुड़ाने का प्रयत्न करना कर्तव्य है। वहाँ असहायों की सहयता करना भी धर्म है। संसार में अनेक प्राणी ऐसे हैं, जिन्हें हमारी सहायता की जरूरत है। प्रभु ने पृथ्वी पर असहायों की सृष्टि इसलिए की है कि समर्थ लोग उन्हें सहायता देकर अपना आत्म कल्याण करें। यदि सभी जीव सम्पन्न होते तो दया और सेवा के सद्गुणों की आवश्यकता न रहती और उनके लोप के साथ आध्यात्मिक महत्व ही नष्ट हो जाता। प्रत्येक पीड़ित की कराह में हमें यह सुनना चाहिए

कि प्रभु हमें सेवा और सहायता के द्वारा आत्मोन्नति करने के लिए आह्वान कर रहे हैं। असहायों की ओर से जब हम मुँह मोड़ कर चलते हैं, तो ईश्वर की पुकार का निरादर करते हुए चलते हैं। मित्रो! यह मानव का कर्तव्य नहीं है।

संसार को ईश्वर की प्रतिमा के रूप में देखिए। हर प्राणी के ऊपर अपने प्रेम का अमृत छिड़किये। दुष्ट और दुराचारियों को दया का पात्र समझ कर उनके पापों को मिटाने का प्रयत्न एक प्रेमी डाक्टर की तरह कीजिए। पीड़ितों और असहायों के स्वर में ईश्वर का आह्वान सुनिये और जो कुछ आप संसार की भलाई के लिए कर सकते हैं, कीजिये। प्रेम और सेवा धर्म को अपने जीवन का अंग बना लीजिए। ध्यान रखि कि ईश्वर के साथ दम्भ और दुर्भावनाओं के साथ व्यवहार न हो। जैसे भावुक भक्त राधेश्याम और सीताराम का स्मरण करते हैं, आप उसी तरह प्रेम-सेवा की रट लगाइए।

यह प्रत्यक्ष धर्म है। नकद सौदा है। जितना करते चलिए, उतनी ही मजूरी दूसरे हाथ से लेते चलिए। इसमें अन्ध विश्वास और बहकावे की भी कोई बात नहीं है। अविश्वास, अवैज्ञानिकता या पछतावे जैसी कोई चीज भी यहाँ नहीं है। जरा शान्त चित्त से-एकान्त स्थान में-आँखें बन्द करके कुछ देर प्रेम और सेवा का स्मरण तो कीजिए। आपके सूखे हुए मानस में एक हरियाली की छटा दिखाई देगी। प्रेमी बनिये, पाप आप से हजारों कोस दूर भाग जायेंगे, सेवक बनिये, वासनाऐं आप से योजनों दूर हट जायेंगी। प्रभु के प्रत्यक्ष दर्शनों से आप कृत्य-कृत्य हो जायेंगे।

अखण्ड-ज्योति के पाठको! अपनी आध्यात्मिक साधनाओं में इन दो साधनाओं का समावेश करना मत भूलना। हृदय पलट पर इन शब्दों को अंकित कर लो—

प्रेम और सेवा।

आश्रम धर्म

(महात्मा गाँधी)

चारों आश्रम एक दूसरे के साथ इस प्रकार मिले हुए हैं कि एक के बिना दूसरे का पालन नहीं हो सकता ब्रह्मचर्याश्रम में तो मनुष्य का जन्म ही होता है, इस लिये इस आश्रम को बिलकुल अनिवार्य समझना चाहिए। इस दिव्य आश्रम को जीवन पर्यन्त या दीर्घकाल तक पालन करने का मनुष्य को अधिकार है। फिर भी कम से कम लड़कियों को १८ वर्ष तक और लड़कों को २५ वर्ष तक पवित्रता पूर्वक ब्रह्मचर्य आश्रम का पालन करना ही चाहिए।

यह विचार बिलकुल भ्रम पूर्ण है कि ग्रहस्थाश्रम तो भोग बिलास के लिये है। हिन्दू धर्म की सारी व्यवस्थाऐं संयम की ही परिपुष्टि के लिये हैं। इस धर्म में भोग विलास कभी अनिवार्य नहीं हो सकता। सादगी और संयम तो ग्रहस्थाश्रम का आभूषण है। परन्तु कितने ही मनुष्य भोगों के आकर्षण से बच नहीं पाते इसलिये ग्रहस्थाश्रम में भोगों की मर्यादा बाँध दी गई है। आज तो सभी मनुष्य गृहस्थ वृत्ति में-प्रजा वृद्धि में-प्रवृत्त हैं। इससे अधिकतर व्यभिचार और स्वेच्छाचार की ही वृद्धि होती है।

इस प्रकार के व्यभिचारी और स्वेच्छाचार का जीवन बिताते हुए अन्त समय में वानप्रस्थ या सन्यास का पालन असंभव हो जाता है। ग्रहस्थ को चाहिए कि वह क्रमशः इन भोगों को कम करता हुआ ब्रह्मचर्य को पुनः सतेज बनावे और वानप्रस्थ को अपनावे। भोगेच्छाओं पर विजय प्राप्त करने के लिये इन्द्रियों का संयम करना ही वानप्रस्थ है।

जिसने राग, द्वेष को पूरी तरह से जीत लिया और जो तन, मन तथा वचन से सत्य अहिंसा आदि धर्मों का पालन करता है, उसे सन्यासी कहा जा सकता है। ऐसा सन्यासी निष्काम भाव से सेवा करने में अपने जीवन को लगाता है और निर्वाह का आधार भिक्षा समझता है।

आश्रमों का बाहरी वेष भूषा से कोई सम्बन्ध नहीं है।

मुर्दापन, कायरता छोड़ो

(स्व० स्वामी विवेकानन्द जी)

भगवद्‌गीता के दूसरे अध्याय में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को दांभिक और डरपोक कहा है, इस पर कई लोग बड़ा आश्चर्य करते हैं। अर्जुन को गुरु-जनों और स्नेहियों के साथ युद्ध करना पाप जान पड़ा, जब कि सम्पूर्ण विश्व पर प्रेम करना हमारा कर्तव्य है, तब स्वजनों का बध करना मानो प्रेम की खुली तिलाञ्जलि देना है। इस प्रकार अर्जुन युद्ध में प्रवृत्त नहीं होते थे।

यह अच्छी तरह जानते हुए भी कि हम में शक्ति मौजूद है, यदि हम दुष्ट का प्रतिकार न करें, तो वास्तव में वह एक पुण्य कार्य है, परन्तु अहिंसा के सिद्धान्त के पीछे अपनी कायरता को छिपाना बड़ा भारी पाप होगा। अपने सामने बड़ी भारी सैना देख कर अर्जुन का चित्त क्षण भर में कम्पित हो उठा और उसी दशा में अहिंसा का सिद्धान्त याद आया, परन्तु इस सिद्धान्त के याद आते ही वह अपना कर्तव्य भूल गया, वह अहिंसा के सिद्धान्त के पीछे अपना भय छिपाना चाहता था। श्रीकृष्ण इसे ताड़ गये और उसे फटकारते हुये कहा— 'अशोच्यानन्व शोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाससे।'

एक अत्यन्त आलसी और मूर्ख मनुष्य मुझे एक बार मिला। वह मुझ से बोला—"भाई! परमेश्वर की प्राप्ति का कोई मार्ग आप बतलावें?" मैंने उससे पूछा—"तू झूठ बोलना जानता है?" वह बोला—'नहीं'। तब मैंने उससे कहा—'तो फिर पहले तू झूठ बोलना सीख।' क्योंकि पत्थर के सदृश्य होकर बैठने की अपेक्षा झूठ बोलना भी कोई बुरा नहीं है। बाहर से जो अत्यन्त निश्चित तेरी स्थिति देख पड़ती है, वह स्थिति उस की दशा नहीं है, किन्तु पत्थर की है। इस कारण कोई बुरे कार्य भी तेरे हाथ से नहीं होते। इसलिए पहले कुछ बुरे कार्य करना ही सीख।'

पत्थर का सा मुर्दापन किसी प्रकार उचित नहीं किन्तु वह सर्वथा त्याज्य है। यह कहना बहुत सहज है कि—"किसी का भी द्वेष न करो और बुरे का भी प्रतिकार न करो।" परन्तु इस सिद्धान्त का कार्य रूप में परिवर्तित करना भयानक होगा। यह ध्येय अत्यंत उच्च श्रेणी का है कि अपनी रक्षा के लिए भी किसी को दुख न दिया जाय। आप सोचिये तो सही कि यदि इसी ध्येय का हम नित्य व्यवहार में आचरण करने लगें तो कितने अनर्थ उपस्थित होंगे। हमारे जान माल की भी रक्षा नहीं होगी। सम्पूर्ण समाज का संघटन बिगड़ जायगा और किसी का किसी पर नियंत्रण न रहेगा। आप एक ही दिन यदि उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुसार आचरण करें तो चारों ओर नादिरशाही के दृश्य दिखाई देने लगेंगे। इसलिए उपर्युक्त सिद्धान्त की उच्चता को मानते हुए भी आज की सामाजिक दशा में उसको व्यावहारिक रूप देना अनिष्ट है और यदि आप कहें कि यह सिद्धान्त अच्छा है और इस-लिए इसके अनुसार आचरण न करने वाले पापी हैं तो मैं कहता हूँ कि आपको बहुत ही थोड़े मनुष्य इस संसार में ऐसे मिलेंगे जो कि इस पाप से मुक्त होंगे। इस दृष्टि से प्रायः सम्पूर्ण मानव जाति को ही पापी कहना पड़ेगा।

किसी मनुष्य को रास्ते से चले जाने वाले एक मनुष्य ने गालियाँ दीं, अब वह मनुष्य यदि गालियों को सुन कर भी चुप ही रहा, तो उसके इस कार्य में परस्पर विरुद्ध दो उद्देश्य हो सकते हैं—या तो अपने शत्रु को मोटा ताजा देख कर भय से वह चुप रहा, अथवा यह जानते हुए भी कि एक डांट से ही इसका मुंह बंद कर देने की शक्ति मुझ में है, केवल उसे क्षमा करने के लिए ही चुप रहा। ये दो बातें अलग अलग हैं। बाह्यतः कार्य का स्वरूप एक ही है, पर उद्देश्य में जमीन आसमान का अन्तर है। अतएव कार्य एक ही होते हुए भी उससे उत्पन्न होने वाले

योगियों की आवश्यकता

(योगी अरविन्द घोष)

कार्य करना भी एक साधना है। अपने जीवन में हम जो कुछ कर रहे हैं, वह सब भगवान के लिए ही कर रहे हैं। ऐसा ज्ञान रखकर ही कर्म करना चाहिए। कुछ न कुछ करना ही चाहिए, ऐसा समझ कर जो कुछ सामने आवे उसी में लग जाय, यह कोई उचित बात नहीं है। हमें कर्म करना चाहिए, किन्तु अपनी अन्तरात्मा की पूर्ण आज्ञा से। यही नहीं; भीतर से हमें जिस काम के करने के लिए जैसी प्रेरणा हो, उसी के अनुसार कर्म करने के लिए हमें तत्पर होना चाहिए।

यहाँ पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि—सामने तो बहुत से काम हैं, उनमें से कौनसा काम हमें करना चाहिये ? कौनसा कर्म हमारा निर्दिष्ठ कर्म है इसी को निर्णय करने की आवश्यकता है। मनुष्य का स्वभाव ही कुछ ऐसा है कि वह किसी गंभीर और विचारपूर्ण विषय में जल्द प्रवेश नहीं करना चाहता। वास्तव में यह कार्य उसके लिए कठिन भी होता है। कर्म की भलाई बुराई का निर्णय कर लेना सब लोगों के लिए आसान नहीं है, इसीलिये तो दुनियाँ में भेड़ चाल की प्रथा है। जनता प्रायः किसी बड़े प्रभावशाली या नेता के ऊपर अवलंबित रहती है और जहाँ तक हो सकता है अपने नेता के पीछे अनुगमन करती है।

देश के अनेक व्यक्ति विभिन्न नेताओं के विश्वास पर अपने मार्ग निर्धारित करते हैं। कुछ दिनों के उत्साह के बाद वे देखते हैं कि इस प्रकार जीवन की उच्च अभिलाषाऐं पूर्ण नहीं होतीं और न मन एवं बुद्धि को संतोष होता है। ऐसी दशा में वे खिन्न और निराश हो जाते हैं। भगवत् साधना में जीवन को पुष्ट किये बिना आगे बढ़ना तथा अपनी शुद्ध वासनाओं को प्रभु के चरणों पर उत्सर्ग किये बिना किसी भी कार्य में शान्ति नहीं मिल सकती। परमात्मा को एक शक्ति का केन्द्र मान कर उसके आधार पर बहुत कुछ किया जा सकता है। हमारे नेताओं की यदि अन्तर्दृष्टि हो, वे अध्यात्मिकता को ध्यान में रखकर काम करें, तो सर्वत्र एक विचित्रता दिखाई देने लगे। भारत को सब से अधिक आवश्यकता कर्मनिष्ठ योगियों की है।

—:—

पाप पुण्य का स्वरूप बिलकुल भिन्न है। भय से चुप रहना पाप परिणामी है और शक्ति होते हुए भी उसका संयम करके क्षमा से चुप रहना पुण्य है। बुद्ध राजा के घर में पैदा हुए थे और बचपन से ही सुख में रहे थे, तो भी उन्होंने राज सुख को लात मार दी। इसका नाम है सच्चा त्याग। परन्तु जिस के पास खाने को नहीं है, ऐसा भिखारी यदि एकादशी का व्रत करे तो क्या उसे कोई पुण्यात्मा कहेगा ?

जब हमें यह मालूम होता है कि हम प्रज्ञ नहीं हैं, वास्तव में हम समता और शान्ति का कवच पहने हुए नहीं हैं, तो यह बात मन में आये बिना नहीं रहती है कि—' भाई ! यह ढोंग छोड़ दो और प्रबल प्रतिकार करके आगे बढ़ो।'

—:o:—

अपने परिश्रम से महत्ता और उपयोगिता प्राप्त करके महान और उत्तम बने हुए पुरुषों के जीवन चरित्र का अवश्य अभ्यास करना चाहिये। ऐसे अभ्यास से प्रोत्साहन और उच्च विचार प्राप्त होते हैं।

× × × ×

दूसरों से प्रेम करना अपने आप से प्रेम करना है।

× × × ×

जिसकी इच्छा शक्ति प्रबल है, उसके लिये कोई बात असंभव नहीं है।

× × × ×

आशा, विश्वास और उन्नति शीलता से विघ्न बाधा सदा दूर रहते हैं और उपस्थित कठिनाई भी हार मान लेती है।

कथा—

२० उंगलियों की कमाई

एक तपस्वी ब्राह्मण धनाभाव के कारण बड़ा दुखी रहता था। सारा दिन ब्रह्मनिष्ठा में व्यतीत हो जाता। पैसे आने का कोई अन्य साधन न था। आकाशी जीविका से जो थोड़ी बहुत आय हो जाती, उसी से उनका कुटुम्ब अपना भरण पोषण कर लेता। आमदनी इतनी स्वल्प थी कि कुटुम्ब के लिए भोजन और वस्त्र भी पूरे न हो पाते।

नित्य के अभावों से दुखी होकर ब्राह्मण पत्नी ने एक दिन अपने पति से कहा—आर्य ! नित्य के कष्ट अब असहनीय होते जाते हैं, इसलिए कोई ऐसा उपाय कीजिए जिससे यह कठिनाइयाँ कम हो जावें। उस वन्य प्रदेश में ब्राह्मण क्या आजीविका कर सकता था, उसने बहुत सोचा कि अपने नियमित कार्यक्रम को पूरा करते हुए द्रव्य उपार्जन की कुछ व्यवस्था कर सकूँ। पर स्थिति कुछ ऐसी ही थी, वह वहाँ कुछ कर नहीं सकता था। बहुत विचार करने के बाद भी जब वह किसी निश्चित परिणाम पर न पहुँच सका, तो ब्राह्मणी ने कहा—"नाथ ! हम लोग अकर्मण्य नहीं हैं। प्रमाद या आलस्य में समय बिता कर या अयोग्यता के कारण अभाव नहीं भुगत रहे हैं। यदि हम अयोग्य और अकर्मण्य होते तब तो निश्चय ही हमें दुख भोगने के अधिकारी थे, परन्तु हम लोगों का जीवन तो लोक सेवा के लिए है। आप अपनी प्रकाण्ड विद्वत्ता और उज्वल आत्म शक्ति का उपयोग लोक सेवा के लिए कर रहे हैं। इसके बदले में क्या अन्न-वस्त्र की आवश्यकता हम समाज द्वारा पूरी करने के अधिकारी नहीं हैं ? निश्चय ही साधारण जनता ऐसे अप्रत्यक्ष सेवकों का महत्व अच्छी तरह पहचान नहीं पाती, जिनके द्वारा निर्मल ज्ञान गंगा का आविर्भाव होता है और जो अपनी आत्म शक्ति द्वारा जन समाज के दुखदायी अरिष्टों को दूर करने के भागीरथ प्रयत्न में प्रवृत्त रहते हैं। यदि अज्ञान वश लोग हमारी आवश्यकताओं की ओर ध्यान नहीं देते हैं। तो हमें इसके लिए उन्हें चेताना चहिए।"

ब्राह्मण के मुख पर हँसी की एक रेखा दौड़ गई। वह समझ गया कि ब्राह्मणी की इच्छा किसी सम्पन्न व्यक्ति से कुछ माँग लाने की है। सन्तोषी ब्राह्मण का स्वभाव कुछ संकोचशील था, वह अपने को अधिक से अधिक तपस्या की कसौटी पर कसना पसन्द करता था, परन्तु जब ब्राह्मणी का आग्रह देखा, तो उसे इसमें भी कुछ अनुचित न प्रतीत हुआ कि किसी सम्पन्न व्यक्ति से कुछ याचना करली जाय। तपस्वी ने ब्राह्मणी की ओर स्वीकृति सूचक शिर हिला दिया।

दूसरे दिन प्रातः काल नित्यकर्म से निवृत्त होकर ब्राह्मण उत्तर दिशा के लिये चल दिया और कई दिन की यात्रा को पार करते हुए उस देश के राजा के नगर में जा पहुँचा। राजदूतों ने उसके आने की सूचना राजा को दी। समाचार पाते ही राजा उनकी अगवानी को दौड़ा आया। वह जानता था कि धनी और शक्तिशाली होने का सच्चा महत्व इसमें है कि इससे लोक सेवी महानुभावों की सेवा और सहायता की जावे। कई व्यक्तियों की स्थिति धन और सत्ता एकत्रित करने की होती है। वे प्रत्यक्ष शरीर से संसार की भलाई का कोई अधिक कार्य नहीं कर सकते, ऐसे लोगों का कल्याण इसी में है कि वे अपनी शक्ति को अधिक से अधिक मात्रा में साधुजनों के समर्पण कर दें। राजा ने इस मानव धर्म को समझा था और वह साधुजनों की सेवा के लिए सदैव प्रस्तुत रहता था।

बड़ी आव भगत के साथ तपस्वी को अतिथिशाला में ठहराया गया। उनका वैसा ही आतिथ्य सत्कार किया गया, जैसा कि बड़े-बड़े राज कर्मियों का होता है। ब्राह्मण से उस दिन अपनी थकान मिटाई और अतिथिशाला में विश्राम करते रहे। दूसरे दिन राजा उनके सन्मुख आया और प्रणाम करके विनम्र भाव से पूछा—भगवन् ! आज्ञा दीजिए। इस सेवक के लिए क्या सेवा है। ऋषि ने सरल स्वभाव से अपने आगमन का कारण कह सुनाया।

कोषाध्यक्ष को बुला कर राजा ने आज्ञा दी
; दस हजार रुपया इन महा पुरुष की भेंट किये
य। रुपया जब ब्राह्मण के समक्ष आये तो उनके
हरे पर प्रसन्नता नहीं, वरन् खिन्नता की रेखायें
च गईं! राजा ने पूछा—महात्मन् कदाचित यह धन
म है, क्या इससे अधिक उपस्थित करूँ? ब्राह्मण
कहा—'हाँ!' अब दस हजार अशर्फियाँ लाई गईं।
भी कम बताई गईं। राजा ने क्रमशः अधिक
उपस्थित किया पर वह भी थोड़ा ही कहा गया।
ाँ तक कि राजा ने अपना सारा खजाना और
ज्य उनके सम्मुख रखा पर ब्राह्मण को इससे भी
ोष न हुआ।

तब राजा ने पूछा—मेरे पास यही वस्तुएँ थीं अब
के अतिरिक्त जो वस्तु आप चाहते हों वह स्वय
बतलाने की कृपा करें। ब्राह्मण ने कहा—राजन्,
का महत्व धन के अधिक परिमाण में होने में
ं, वरन् उत्तम भावनाओं के साथ दान करने
है और उत्तम भावनाऐं उसी धन में हो सकती हैं
बीसों उङ्गलियों के परिश्रम से कमाया गया हो।
तुमने यह सब धन अपने परिश्रम से कमाया है
नहीं तो इस धन को देकर तुम्हारा और लेकर
कुछ विशेष भला न होगा। मुफ्त का माल देने
लेने वाले में से किसी का कल्याण नहीं कर
ता, यदि तुम्हारा अपने परिश्रम से कमाया हुआ
धन हो तो वह मुझे देदो।

राजा ने ध्यान पूर्वक तलाश किया पर उसे
ना कमाया हुआ एक पैसा भी प्रतीत न हुआ।
ऋषि खाली हाथों लौट जाने को तैयार होने लगे
ा ने उनसे करबद्ध प्रार्थना की कि प्रभो! आज
जाइये। रात को मैं मजूरी करूँगा और जो
धन मुझे मिलेगा आपको देदूंगा। ऋषि प्रसन्नता
क ठहर गये।

दिन को राजा किसकी मजूरी करता? और कौन
से करवाता? इसलिए उसन रातका समय इसके
तय किया। जब एक पहर रात चली गई तो
पुराने कपड़े पहन कर राजा मजूरी की तलाश
में निकला। शहर के गली कूंचों में घूमते हुये
उसने एक जगह देखा कि एक लुहार की भट्टी जल
रही है राजा ने उससे प्रार्थना की कि यदि कोई काम
हो तो उसे रात भर के लिए नौकर रखले। लुहार
को एक आदमी की जरूरत भी थी, उससे कहा चार
बजे तक भट्टी की धोंकनी चलाना तुम्हें चार पैसे
मिलेंगे। राजा धोंकनी चलाने लगा और प्रातः काल
चार पैसे लेकर अपने घर चला आया।

दूसरे दिन वह चार पैसे लेजाकर उसने ब्राह्मण
के सामने रखदिये और उन्हें किस प्रकार कमाया
इसका सारा वृत्तान्त बता दिया। तपस्वी प्रसन्न
होता हुआ उन चार पैसों को लेकर चल दिया। घर
पर ब्राह्मणी प्रतीक्षा कर रही थी कि पति महोदय
धन लेकर आते होंगे जिससे गृहस्थी की सारी वस्तुऐं
खरीदूंगी। कई दिन की प्रतीक्षा के बाद ब्राह्मण जब
घर पहुंचा तो सब को बड़ी प्रसन्नता हुई और उत्सु-
कता पूर्वक उस धन को देखने के लिए सब उनके
पास एकत्रित हो आये। देखा तो केवल चार पैसे
उन के टेंट में लगे हुए थे। ब्राह्मणी दुख और क्रोध
से झुंझला गई उसने उन चार पैसों को उठा कर
दूर फेंक दिया।

घर भर में निराश और असंतोष की विचार
धारा बह रही थी। रात को किसी ने भोजन नहीं
किया और सब यों ही सो रहे। उन फेंके हुए पैसों
को कूड़े में से ढूँढने तक की किसी की हिम्मत न हुई।
सब लोग यों ही कुड़-कुड़ाते हुए आपकी चटाइयों
पर निद्रामग्न होगये।

प्रातः काल देखा गया कि उसके ढेर पर चार
बड़े सुन्दर पेड़ खड़े हुए हैं, जिन पर चाँदी के पत्ते
सोने के फूल और हीरों के फल लगे हुए हैं। उसकी
एक एक टहनी का मूल्य करोड़ों रुपया होता। ऐसे
वृक्ष को पाकर भला किस प्रकार का अभाव रहता
उनका घर धन-धान्य से भर गया।

दूर-दूर से लोग उन वृक्षों को देखने आये स्वयं
राजा उन्हें देखने आया। सब का आश्चर्य निवारण
करते हुए ब्राह्मण ने कहा-सज्जनो! बीसों उङ्गलियों
की कमाई का फल ऐसा ही है।

कर्तव्य धर्म में योगसाधन

चिर कालीन आध्यात्मिक साधना के बाद बहुत दिनों तक कठोर तपस्या करने के पश्चात् उसे कुछ सिद्धियां प्राप्त होने लगीं थीं। युवा संन्यासी एक दिन वृक्ष के नीचे बैठा हुआथा। डाल पर बैठे हुए पक्षी ने जो पर फड़फड़ाये तो वहाँ की सूखी पत्तियाँ झड़ पड़ीं। तरुण ने क्रोध से ऊपर की ओर आँख उठाई तो क्षण भर में जलता झुलसता हुआ पक्षी नीचे आ गिरा। संन्यासी को अपनी सफलता पर बड़ी प्रसन्नता हुई। उस प्रसन्नता में अहङ्कार भी छिपा हुआ था। ओ हो, मैं इतनी सिद्धि तो प्राप्त कर चुका तपस्वी की बाछें खिल उठीं।

भिक्षाटन द्वारा ही उसकी उदर पूर्ति होती थी। दूसरे दिन भी नित्य की भांति वह भिक्षा पात्र लेकर अन्न लेने के लिए निकला। वही याचक था, वही भिक्षा पात्र, वही मार्ग लेकिन आज तपस्वी के साथ अहङ्कार का दर्प और भी था। वन्य प्रदेश को पार करता हुआ निकट की नगरी में वह पहुंचा। पहले ही घर में उसने 'भिक्षां देहि' की आवाज लगाई थी कि भीतर से निराशा जनक उत्तर मिला। भीतर से गृहस्थायिनी ने कहा—"थोड़ी देर ठहरिये महाराज! जरा फुरसत पालूं तब भिक्षा दूंगी।"

संन्यासी का नव जात मानस पुत्र इस प्रकार का उत्तर पाने के लिये तैयार न था। उसके अहंकारने कहा-हैं, इस तुच्छ स्त्री का इतना साहस! मुझे सिद्ध योगी का चार दानों के लिये उसके दरवाजे पर 'फुरसत' तक के लिए खड़ा रहना पड़ेगा? नीति कहती है कि छोटा मनुष्य जब महत्व प्राप्त करता है, तो उसे दूसरे लोग अपने सामने तृणवत् दिखाई पड़ने लगते हैं। सन्यासी के मन में पक्षियों को जला डालने वाला ब्रह्म तेज जागृत होने लगा।

तमतमाते हुए चहरे पर भौंहों को टेढ़ी किये हुए वह क्रुद्ध संन्यासी कुछ सोच ही रहा था कि भीतर से आवाज आई।—" योगिराज ! दर्प मत कीजिये। हम लोग पक्षी नहीं हैं।"

तरुण अवाक् रह गया। उसका क्रोध कपूर की तरह उड़ गया अब तो वह अचंभेमें डूबा हुआ था। कैसे इस स्त्री ने जाना कि मैंने पक्षी को जलाया था। ? कैसे इसने जाना कि मैं वैसे ही विचार इसके लिए कर रहा हूँ। यह गृहस्थ स्त्री जो तपश्चर्या और योग साधना के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानती, कैसे मनोगत विचारों को जान लेती है और कैसे भूत काल की घटनाओं का ज्ञान रखती है? संन्यासी बड़ी दुविधा में पड़ गया। इतने में वह स्त्री भिक्षा लेकर बाहर निकल आई। भिक्षा लेने से पूर्व संन्यासी आग्रह पूर्वक उससे पूछने लगा कि—'माता तूने वह दोनों गुप्त बातें जिन्हें मेरे अतिरिक्त और दूसरा कोई मनुष्य नहीं जानता तूने क्यों कर जाना? क्या तू कोई योग साधना करती है?

स्त्री ने विनम्र होकर कहा—पुत्र! संन्यासी होना विशेष वर्ण के वस्त्र धारण करना या कुछ निर्धारित क्रियायें करना ही योग साधना नहीं है। सच्चे हृदय से अपने कर्तव्य धर्म को पालन करना भी योग है और यह भी वैसी ही ऊँची साधना है जैसी समाधि लगाना। मैं बिलकुल साधारण स्त्री हूँ। मेरे पति बीमार हैं। जिस समय तू भिक्षा के लिए आया उस समय मैं उनकी आवश्यक सुश्रूषा कर रही थी, इसलिए तुझे थोड़ा ठहरनेके लिए मैंने कहा था। मैंने अपने पति को ईश्वर समझ कर अनन्य भाव से उनकी सेवा की है, और सदैव उनकी आज्ञा का अनुसरण किया है यही मेरा योग साधन है और यही मेरी तपश्चर्या है इसीके आधार पर गुप्त बातों को जान लेने का मुझे अभ्यास होगया है।

संन्यासी को इतने से ही संतोष न हुआ। वह विस्तार पूर्वक इसका तत्व ज्ञान जानना चाहता था कि कर्तव्य धर्म का पालन करना ही क्यों कर योग साधना की समता कर सकता है। वह अशिक्षित स्त्री पण्डित नहीं थी और न थी शास्त्रकार वह तर्क और प्रमाणों द्वारा संन्यासी का समाधान करने में समर्थ न थी, इसलिये उसने कहा-पुत्र मैं तुझे अच्छी तरह इस विषय को समझा नहीं सकूंगी

इसलिये तू अमुक नगर में चला जा, वहाँ अमुक मुहल्ले में एक कसाई माँस की दुकान करता है, वह तुझे इसका सारा रहस्य समझा सकेगा।

वह भिक्षा माँगने आया था पर उलझनों का एक जंजाल ले चला। इस अशिक्षित ग्रामीण स्त्री को गुप्त ज्ञान की सिद्धि देख कर उसे बड़ा भारी आश्चर्य हो रहा था, पर यह सुन कर तो उस आश्चर्य का ठिकाना ही न रहा कि नित्य पशु पक्षियों की हत्या करने वाला और माँस जैसा अभक्ष पदार्थ बेचने वाला मनुष्य आध्यात्म तत्व का उपदेश करेगा। जिज्ञासा इतनी तीव्र हो उठी कि बिना उसका समाधान हुए उसे चैन नहीं मिल रहा था। भिक्षा लेकर अपनी कुटी को लौटने का विचार उसने छोड़ दिया और सीधा कसाई के नगर की ओर चल पड़ा।

कड़ी मंजिलें पार करते करते कितने ही दिन पश्चात् साधु उस नगर में पहुँचा। पूछता पूछता जब वह नियत स्थान तक पहुँचा तो देखा कि हृष्ट पुष्ट कसाई हाथ में छुरी लिये हुए मांस काट रहा है और अपने ग्राहकों को बेच रहा है। कसाई की निगाह सामने खड़े हुए साधु पर गई तो उसने नम्रता पूर्वक प्रणाम किया और उचित आसन देते हुए उनके यहाँ तक आने पर मार्ग में जो जो घटनाएं घटीं थीं उन सबका जिक्र उसने स्वयं ही कर डाला और कहा आप अमुक स्त्री के कहने पर सिद्धियों का रहस्य मालूम करने आये हैं। थोड़ी देर विराजिये, दुकान बन्द करके घर चलूँगा तो आप की योग्यतानुसार आपकी सेवा करने का प्रयत्न करूँगा। आश्चर्यचकित संन्यासी व्याध के दिये हुए आसन पर बैठ गया और कर्म की गहन गति के बारे में अपनी अल्पज्ञता का अनुभव करने लगा।

संध्या समय दुकान बन्द करके कसाई उस संन्यासी को लेकर अपने घर पहुँचा। बाहर चबूतरे पर उन्हें बिठाकर स्वयं अपने घर गया और वृद्ध माता पिता को स्नान भोजन आदि कराकर वापिस आया। और तब साधु के निकट बैठ कर उसके हाथ जोड़ कर पूछा—कहिये भगवन् मेरे लिए क्या आज्ञा है? संन्यासी ने अध्यात्म तत्व सम्बन्धी अपने गूढ़ प्रश्न किये और कसाई ने सबका संतोषजनक उत्तर दिया। वह प्रश्नोत्तर महाभारत में 'व्याध गीता' के नाम से मौजूद हैं।

उन उत्तरों को सुन कर संन्यासी बड़ा चकराया और पूछने लगा कि इतना विमल ज्ञान होने पर भी ऐसा पाप कर्म क्यों करते हो? कसाई ने उत्तर दिया भगवन कर्म की अच्छाई बुराई उसके बाह्य रूप से नहीं वरन् करने वाले की अच्छी बुरी भावना के अनुसार ईश्वर नापता है। संसार में कोई भी कर्म न तो अच्छा है न बुरा। करने वाले की नीयत के अनुसार उस पर अच्छाई बुराई का रङ्ग चढ़ता है। न्यायाधीश फाँसी की सजा देता हुआ भी हत्या के पाप का भागी नहीं होता।

× × × ×

योग साधन एक कर्म काण्ड है जिसके द्वारा आध्यात्मिक पवित्रता और एकाग्रता का संपादन होता है और इन्हीं दो तत्वों के आधार पर दिव्य तत्वों की प्राप्ति होती है। किन्तु कर्मकाण्ड एक ही प्रकार का नहीं है, उसके अनेक रूप हो सकते हैं। अपने कर्तव्य धर्म को पवित्र भावनाओं और परमार्थ बुद्धि से पालन करता हुआ एक साधारण या नीच कोटि का कहलाने वाला मनुष्य भी वैसी ही सफलता प्राप्त कर सकता है, जैसे कि एक उच्च कोटि का तपस्वी।

इच्छा शक्ति और परिश्रम पर ही मनुष्य की सफलता निर्भर है, जो कठिनाइयों का दृढ़ता से सामना करने वाली है। यह देख कर आश्चर्य होता है कि इनके द्वारा किस प्रकार असंभव बातें भी संभव हो जाती हैं।

× × × ×

प्रकृति मार्ग में कठिनाइयाँ डालने से पूर्व मानसिक बल बढ़ा देती है।

ऐसा यज्ञ करो !

महाभारत की समाप्ति के उपरान्त पांडवों ने एक महान यज्ञ किया। कहते हैं कि वैसा यज्ञ उस जमाने में और किसी ने नहीं किया था। गरीब लोगों को उदारता पूर्वक इतना दान उस यज्ञ में दिया गया था कि उनके घर सोने से भर गये। वैसी दानवीरता को देख कर सब ने दाँतों तले उंगली दबाई।

इस यज्ञ की चर्चा देश-देशान्तरों में फैली हुई थी। यहाँ तक कि पशु पक्षी भी उसे सुने बिना न रहे। एक नेवले ने जब इस प्रकार के यज्ञ का समाचार सुना तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। क्यों कि एक छोटे से यज्ञ के उच्छिष्ट अन्न से छू जाने के कारण उसका आधा शरीर सोने का हो गया था। इस छोटे यज्ञ में भूठन के जरा से कण ही मिले थे जिनसे वह आधा ही शरीर स्पर्श कर सका था। तब से उनकी बड़ी अभिलाषा थी कि किसी प्रकार उसका शेष आधा शरीर भी सोने का हो जावे। वह जहाँ यज्ञ की खबर सुनता वहीं दौड़ा जाता और यज्ञ की जो वस्तुएं इधर उधर पड़ी मिलतीं उनमें लोटता, किन्तु उसका कुछ भी प्रभाव न होता। इस बार इतने बड़े यज्ञ की चर्चा सुनकर नेवले को बड़ी प्रसन्नता हुई और वह अविलम्ब उसकी जूठन में लोटने के लिये उत्साह पूर्वक चल दिया।

कई दिन की कठिन यात्रा तय करके नेवला यज्ञ-स्थल पर पहुँचा और वहाँ की कीच, जूठन, यज्ञ-स्थली आदि में बड़ी व्याकुलता के साथ लोटता फिरा। एक बार नहीं कई कई बार वह उन स्थानों पर लोटा और बार-बार आंखें फाड़ कर शरीर की परीक्षा की कि देखें मैं सोने का हुआ या नहीं। परन्तु बहुत परिश्रम करने पर भी कुछ फल न हुआ। तब वह एक स्थान पर बैठ कर शिर धुन-धुन कर पछताने लगा।

नेवले के इस आचरण को देखकर लोग उसके पास इकट्ठे हो गये और इसका कारण पूछने लगे। उसने बड़े दुख के साथ उत्तर दिया कि इस यज्ञ की प्रशंसा सुनकर मैं दूर देश से बड़ा कष्ट उठा कर यहाँ तक आया था, पर मालूम होता है कि यहाँ यज्ञ हुआ ही नहीं। यदि यज्ञ हुआ होता तो मेरा आधा अंग भी सोने का क्यों न हो जाता! लोगों की उत्सुकता बढ़ी, उन्होंने नेवले से कहा आपका शरीर सोने का होने और यज्ञ से उसका संबंध होने का क्या रहस्य है कृपया विस्तारपूर्वक बताइए।

नेवले ने कहा—सुनिए ! एक छोटे से ग्राम में एक गरीब ब्राह्मण अपने परिवार सहित रहता था। परिवार में कुल चार व्यक्ति थे। (१) ब्राह्मण (२) उसकी स्त्री (३) बेटा (४) बेटे की स्त्री। ब्राह्मण अध्यापन कार्य करता था। बालकों को पढ़ाने से उसे जो कुछ थोड़ी बहुत आमदनी हो जाती थी, उसी से परिवार का पेट पालन करता था। एक बार लगातार तीन वर्ष तक मेह न बरसा जिससे बड़ा भारी अकाल पड़ गया। लोग भूख के मारे प्राण त्यागने लगे। ऐसी दशा में वह ब्राह्मण परिवार भी बड़ा कष्ट सहन करने लगा। कई दिन बाद आधे पेट भोजन की व्यवस्था बड़ी कठिनाई से हो पाती वे बेचारे सब के सब सूख सूख काँटा होने लगे। एक बार कई दिन उपवास करने के बाद कहीं से थोड़ा सा जौ का आटा मिला। उसकी चार रोटी बनी। चारों प्राणी एक रोटी बाँट कर अपनी थालियों में रख कर खाने को बैठते ही जाते थे कि इतने में दरवाजे पर एक अतिथि आकर खड़ा होगया।

गृहस्थ का धर्म है कि अतिथि का उचित सत्कार करे। ब्राह्मण ने अतिथि से कहा—पधारिए भगवन्! भोजन कीजिये। ऐसा कहते हुए उसने अपनी थाली अतिथि के आगे रखदी। अतिथि ने उसे दो चार ग्रास में खा लिया और कहा—भले आदमी, मैं दस दिन का भूखा हूँ, इस एक रोटी से तो कुछ नहीं हुआ उलटी भूख और अधिक बढ़

ईश्वर पर विश्वास रखो।

(महात्मा ईसा के उपदेश)

अपने लिए पृथ्वी पर धन बटोर कर मत रखो जहाँ कीड़ा और काई बिगाड़ते हैं, और जहाँ चोर सेंध लगा कर चुरा ले जाते हैं। अपना धन स्वर्ग में बटोर कर रखो जहाँ से कोई नहीं चुरा सकता। जहाँ तुम्हारा धन होगा वहीं मन भी लगा रहेगा। शरीर का दीपक नेत्र है इसलिये यदि तुम्हारी दृष्टि निर्मल होगी तो सारा शरीर प्रकाशवान रहेगा। यदि तुम्हारी दृष्टि पाप पूर्ण है तो बस अन्धकार का ही साम्राज्य समझो। कोई दो स्वामियों की सेवा नहीं कर सकता, क्यों कि वह एक से प्रेम और दूसरे से अप्रेम रखेगा अथवा एक से दूसरे को हलका समझेगा। तुम परमेश्वर और धन दोनों की सेवा नहीं कर सकते। इसलिये मैं तुमसे कहता हूँ कि अपने लिए यह चिन्ता न करना कि हम क्या खाऐंगे और क्या पहनेंगे। क्या वस्त्र से शरीर और भोजन से प्राण बढ़ कर नहीं है?

आकाश के पक्षियों को देखो वे न बोते हैं और न काटते हैं, और न बटोर बटोर कर खत्तियाँ गाड़ते हैं तो भी पिता उनको पालता है। फिर ऐ तुच्छ मनुष्यो! तुम में से कौन है जो चिन्ता करके अपनी अवस्था बढ़ा सके। वस्त्रों के लिए क्यों चिन्ता करते हो? वृक्षों को देखो वे कपड़ा नहीं पहनते तो भी कैसे बढ़ते हैं। यदि कल नष्ट हो जाने वाली घास को परमात्मा ऐसी सुन्दर पोशाक पहनाता है तो हे अल्प विश्वासियो! वह तुम्हें क्यों न पहनावेगा? तुम्हारा पिता जानता है कि तुम्हें यह सब वस्तुऐं चाहिए। पहले उसके राज्य और धर्म की खोज करो यह सब वस्तुऐं भी तुम्हें दी जायँगी। कल के लिये चिन्ता न करो क्यों कि कल अपनी चिन्ता आप करलेगा। आज का दुख ही आज के लिये बहुत है।

किसी पर दोष मत लगाओ ताकि तुम पर दोष न लगाया जाय क्यों कि जैसे तुम दोष लगाते हो वैसे ही तुम पर लगाया जायगा और जिस नाप से तुम नापते हो उसी से तुम्हें नापा जायगा। तुम अपने भाई की आँख के तिनके को क्यों देखते हो जब तुम्हें अपनी आँख का लट्ठा नहीं सूझता। तो अपने भाई से कैसे कह सकते हो कि—ठहर जा तेरी आँख के तिनके को निकाल दूँ। पहले अपने ऐब निकालो, तब दूसरों पर दोष लगाना।

गई। अतिथि के वचन सुनकर ब्राह्मण पत्नी ने अपनी थाली उसके आगे रखदी और भोजन करने का निवेदन किया। अतिथि ने वह भोजन भी पा लिया, पर उसकी भूख न बुझी। तब ब्राह्मण पुत्र ने अपना भाग उसे दिया। इस पर भी उसे संतोष न हुआ तो पुत्र वधू ने अपनी रोटी उसे दे दी। चारों की रोटी खाकर अतिथि की भूख बुझी और वह प्रसन्न होता हुआ चलता बना।

उसी रात को भूख की पीड़ा से व्यथित होकर वह परिवार मर गया। मैं उसी परिवार की झोंपड़ी के निकट रहता था। नित्य की भाँति बिल से बाहर निकला तो उस अतिथि सत्कार से बची हुई कुछ जूठन के कण उधर पड़े हुए थे। वे मेरे जितने शरीर से छुए उतना ही सोने का होगया। मेरी माता ने बताया कि किसी महान् यज्ञ के कण लग जाने से शरीर सोने का हो जाता है। इसी आशा से मैं यहां आया था कि पाण्डवों का यह यज्ञ उस ब्राह्मण के यज्ञ के समान तो हुआ होगा, पर यहाँ के यज्ञ का वैसा प्रभाव देखा तो अपने परिश्रमके व्यर्थ जाने का मुझे दुख हो रहा है।

कहा बतलाती है कि दान, धर्म, या यज्ञ का महत्व उसके बड़े परिमाण पर नहीं, वरन् करने वाले की भावना पर निर्भर है। एक धनी का अहंकार पूर्वक लाखों रुपया दान करना एक गरीब के त्याग पूर्वक एक मुट्ठी भर अन्न देने की समता नहीं कर सकता। प्रभु के दरबार में चाँदी सोने के टुकड़ों का नहीं, वरन् पवित्र भावनाओं का मूल्य है।

शक्ति या सेवा

एक बार आँधी और मंद वायु में भेंट हुई। आँधी ने अपनी शक्ति की प्रशंसा करते हुए कहा— देखो मैं जब उठती हूँ तो दूर दूर तक लोगों में हल० चल मच जाती है। मनुष्य अपने घरों में घुस जाते हैं। पशु पक्षी जान बचा कर भागते हैं। बड़े बड़े मकान और पेड़ों को बात की बात में तोड़ मरोड़ कर रख देती हूँ, उस समय बाहर किसी की जबान पर मेरी ही चर्चा होती है और जब चली जाती हूँ तो भी वे मुझे बहुत दिन तक भूल नहीं पाते। क्या तुम मेरे जैसी शक्ति नहीं चाहती।

मंद वायु ने मुसकरा कर कहा मुझे ऐसी शक्ति नहीं चाहिए। मुझे तो सेवा में ही बड़ा आनंद आता है। जब बसंत का सुखदायी संदेश लेकर बहती हूँ तो नदी, तालाब, जंगल, खेत, सभी मुसकराने लगते हैं। चारों ओर रङ्ग बिरंगे फूलों के गलीचे बिछ जाते हैं, सुगंधि से दिशाएँ सुवासित हो उठती हैं। वृक्ष हरियाली से लद जाते हैं। पशु पक्षी आनंद की किलकारियाँ मारते फिरते हैं। चारों ओर आनंद ही आनंद फूट पड़ता है।

आँधी से लोग डरते हैं और उसे बहुत समय तक याद रखते हैं। मंद वायु से प्रसन्न होते हैं और कुछ समय बाद उसे भूल भी जाते हैं फिर भी आँधी और मलय मरुत की तुलना नहीं हो सकती। एक में शक्ति है दूसरी में सेवा। शक्ति एक तड़क भड़क है जो कुछ घड़ी में नष्ट हो जाती है सेवा में सादगी है पर उसकी जड़ अमर लोक में है। शक्ति डराती है किन्तु सेवा आनंद की सृष्टि करती है। यदि सेवा न हो तो यह दुनियाँ वीरान हो जावे।

लोग सत्ता, शक्ति, शासन, पैसा, अधिकार चाहते हैं क्यों? इसलिए कि आँधी की तरह लोगों को डरा सकें, अथवा प्रदर्शन कर सकें, और अपने नाम की चर्चा सुन सकें। उन्हें जानना चाहिए कि इन वस्तुओं का मूल्य तूफ़ानी आँधी जितनी है। चाहने योग्य वस्तु तो सेवा है जिससे अपने और दूसरों के हृदयों में प्रसन्नता की बीन बजने लगती है।

व्यर्थ की बकवात

(श्री स्वेट मार्डन)

छोटे और मामूली कार्यों के लिए हम बड़ी भूमिका बाँधते हैं और बहुत समय खर्च करते हैं फलस्वरूप अधिक खर्च में थोड़ा लाभ मिलता है यदि व्यर्थ की बकवाद छोड़ कर संक्षेप में अपना कार्य करना सीखें तो अपने और दूसरे की समय की बहुत बचत कर सकते हैं और लाभ अधिक पा सकते हैं।

माइरस फील्डस अपने मित्रों से कहा करते थे- समय अमूल्य है। ठीक वक्त पर काम करना, संक्षेप में काम निकालना और ईमानदार रहना जीवन की यह तीन कुञ्जी हैं। जो कुछ आपको कहना हो संक्षेप में कहिए। वे कहते थे-"कभी लम्बी चिट्ठियाँ मत लिखो काम काजी आदमियों को फुरसत नहीं रहती। कोई भी बड़ा काम ऐसा नहीं है जो एक कागज पर न लिखा जा सकता हो। एक बार मैंने इंग्लैण्ड के राजा को पत्र लिखा जो बहुत बड़ा था। मैंने सोचा इतने लम्बे पत्र को वे कैसे पढ़ेंगे, मैंने उसमें से अनावश्यक शब्द छांटने शुरू किए और उसे बहुत छोटा बना लिया। उस पत्र का संतोष जनक उत्तर भी आया। यदि पत्र लम्बा होता तो वह शायद यों ही रद्दी की टोकरी में पड़जाता।"

ए० टी० स्टुवर्ट कहता था समय ही मेरी संपत्ति है। उसके दफ्तर में कोइ मनुष्य बिना कारण बताये प्रवेश नहीं कर सकता था। जो उसके सामने पहुँचता उसे संक्षेप में बात चीत करनी पड़ती। क्यों कि उनके पास एक क्षण भी व्यर्थ खोने के लिए न था। स्टुवर्ट के इन्हीं नियमों के कारण आपने व्यापार में इतनी उन्नति करली थी कि उसके प्रतिद्वन्दी व्यापारी आश्चर्य करतेथे।

स्टील का कथन है—'जब किसी से केवल स्पष्ट सत्य ही कहना है तो वह थोड़े में कह सकता है लाग लपेट के लिए ही बकवात की जरूरत पड़ती है साऊद ने कहा है-'तेज होना चाहते हो तो संक्षेप को स्वीकार करो। सूर्य की किरणें एक बिन्दु पर एकत्रित होकर आग लगा सकती हैं।

अमर नारद

वह इस बात को मानने वाले न थे कि, यह सार मिथ्या है। इससे उदासीन रह कर आत्म ल्याण में ही रत रहना चाहिये। वे इस प्रकार के चारों को स्वार्थ पूर्ण समझते हुए देखते थे, वे णीमात्र को ईश्वर की पूजनीय प्रतिमा समझते र अनन्य भाव से उसकी भक्ति करते थे। परमार्थ उनका स्वार्थ था। जिसकी आत्मा उन्नत होती , विकास के मार्ग पर अग्रसर होती है, उसके लिए सरों का स्वार्थ अपने स्वार्थ की अपेक्षा किसी दृष्टि न्यून नहीं होता, वरन् वह अन्य प्राणियों के सुख लिए स्वयं कष्ट उठाने के लिए तैयार रहते हैं।

नारद ऐसे ही महा पुरुष थे। सतयुग के आदि यह ब्रह्मर्षि अपने तपोबल से मुक्ति के अधिकारी न चुके थे। उनके लिए कुछ कर्तव्य शेष नहीं हा था, सिद्धियों के बल पर वे सब प्रकार के सुख ोग सकते थे, इन्द्रलोक में उन का समुचित आदर ा, विष्णु तो उनके घने मित्र थे, शारीरिक और ानसिक शक्तियाँ पूर्णता प्राप्त कर चुकीं थीं। ऐसी आत्मा को पूर्ण पुरुष ही कहना चाहिए।

परन्तु उन्हें इतने से ही संतोष न हुआ। होता ी कैसे, मनुष्य की आत्मा स्वार्थ तत्वों से बनी हुई हीं है। परमात्मा हर घड़ी देता रहता है, आत्मा भी ान स्वभावी है। देने से, त्याग से, उपकार से ही उसे शान्ति मिलती है। संसार के दुखी प्राणियों को ेख कर उनका हृदय रो पड़ा। उन्होंने सोचा मैं भु की पवित्र संतान हूँ। मेरा कर्तव्य है कि अपने ेता की तरह विश्व हित में अपने को प्रवृत्त करदूं। े आर्त प्राणियों की सेवा में जुट पड़े।

संसार की सेवा किस प्रकार की जाय? पैसा या अन्य भौतिक वस्तुएं दान करने से दूसरों को कुछ तात्कालिक सहायता मिलती है, परन्तु उससे उनका क्लेश नहीं मिट सकता। वह वस्तु समाप्त होते ही फिर नई आवश्यकता उठ खड़ी होती है। इसलिये सब से उत्तम दान 'ज्ञान दान' है। मनुष्य के पास किसी वस्तु का अभाव नहीं है। उसकी इच्छा मात्र से समस्त चीजें प्राप्त हो सकती हैं, कमी केवल ज्ञान की है। किसी को ज्ञान दान देकर उसे सच्चे रास्ते पर लगा देना यही सर्वश्रेष्ठ और अक्षय ब्रह्म दान है। नारद ने इस ब्रह्म दान द्वारा तप्त प्राणियों के क्लेश मिटाना अपना जीवन लक्ष बनाया।

वे अपनी वीणा को लेकर संसार के एक सिरे से दूसरे सिरे तक ज्ञान का उपदेश करते हुए घूमने लगे। कोई पूछे या न पूछे उन्हें धर्मोपदेश देना, कोई सुने वा न सुने उन्हें भगवत् गुणानुवाद का गान करना। उन्हें इस काम में बड़ा रस आता। संसार की सेवा करना उन्हें किसी भी योग साधना से उत्तम प्रतीत होने लगा। वे क्रियात्मक रूप से संसार के झगड़े मिटाने में भाग लेते और उत्तम कार्यों की आयोजना में बड़ी दिलचस्पी दिखाते। अभी विष्णु और लक्ष्मी का विवाह कराने की साँठ गाँठ कर रहे हैं तो अभी इन्द्र और पुरूरवा का झगड़ा सुलझाने लगे हुए हैं। उर्वसी नामकी अप्सरा को प्राप्त करने के लिए इन्द्र और राजा पुरूरवा लड़ रहे थे, भयङ्कर युद्ध होने की संभावना थी, नारद बीच में जा धमके उन्होंने एक वेश्या के लिये दोनों को लड़ने के लिये धिक्कारा और इन्द्र को इसकी ओर से उदासीन करके झगड़ा मिटवाया। उन्हें पापों के जल्दी नाश कराने की बड़ी उतावली रहती थी, इसीलिए वे ऐसी कूटनीतिक चालें रचा करते थे, जिससे दुष्टों का शीघ्र नाश हो। कंस को उलटी पट्टी पढ़ा कर नाश का समय बिलकुल निकट बुला ही तो दिया। संसार में ये कटु घटनाएँ भी उत्पन्न कराते थे। क्यों? इसलिए कि उनका अन्तिम परिणाम विश्व के लिए कल्याणकारी हो। पार्वती नामक राजकुमारी को शिव जैसे योगी के साथ विवाह करने के लिए सिखा दिया। सावित्री को, सत्यवान नामक उस व्यक्ति के साथ विवाह कर

लेने के लिये समझा दिया जो एक वर्ष बाद ही मर जाने वाला था। राजकुमार ध्रुव को तप करने के लिये प्रवृत्त कर दिया। दुनियाँदार लोगों की दृष्टि से इस प्रकार की शिक्षा देना बहका देना कहा जायगा। उस समय भी कहा गया होगा। परन्तु नारद उस मिट्टी के बने हुए न थे जो किसी के कड़ुए शब्दों से विचलित हो जाते हैं और सस्ती वाहवाही के लिये जन रुचिकर कार्य करते रहते हैं। उन्होंने अपने उपदेशों द्वारा अरुचिकर घटनाऐं उत्पन्न कीं, परन्तु अन्ततः वे कड़ुई घटनायें ही उत्तम फलवती सिद्ध हुईं।

महर्षि व्यास महाभारत की रचना कर चुके थे ऐसे महा काव्य की सर्वत्र भूरि भूरि प्रशंसा हो रही थी। नारद ने उस ग्रन्थ को देखा और अनुभव किया कि कोरे इतिहास और नीति शिक्षण से ही मनुष्य की आत्मिक आवश्यकता पूर्ण नहीं हो सकती, उसे सच्ची शान्ति के लिए भक्ति और ईश्वरोपासना की भी आवश्यकता है। वे व्यास के पास जा पहुँचे और उन्हें समझा बुझा कर इस काम के लिये तैयार किया कि आध्यात्मिक उपासना और भक्ति रस से पूर्ण एक महा काव्य की रचना करें। तदनुसार व्यास जी ने श्रीमद्भागवत महापुराण की रचना कर डाली।

कहते हैं कि नारद अमर हैं। ऐसे महा पुरुष का शरीर यदि मर भी गया होगा तो भी वे अमर हैं। जिन्होंने अपने तुच्छ स्वार्थ और शारीरिक सुखों को तिलाञ्जलि देकर संसार के सुख को अपना सुख और परमार्थ को स्वार्थ समझा और उसी में अपना जीवन तिल तिल करके खपा दिया वे मर नहीं सकते। विश्व हितकारी नारद अमर हैं और अमर रहेंगे।

दृढ़ मनुष्य के लिये सदा ही सुअवसर और सुभीता है, हमारे जीवन का उद्देश्य केवल इच्छा शक्ति को दृढ़ बनाना है।

× × × ×

राष्ट्रपति गारफील्ड

ओहियो के घने जंगलों के बीच एक फूस की झोपड़ी में एक विधवा अपना जीवन बिता रही थी, चिन्ता और वेदना से उसके आँसू ढलक रहे थे, वह सोच रही थी अपने इस १॥ वर्षीय बालक की वह जंगली भेड़ियों से किस प्रकार रक्षा कर सकेगी, मुसीबत की मारी इस विधवा ने अपना साहस समेटा और परमेश्वर का पल्ला पकड़ा। उसने बच्चे को भेडिये का शिकार भी न होने दिया और भूखों भी न मरने दिया। कुछ बड़ा होते ही यह बालक माता के साथ लड़कियाँ काटने लगा।

उसने माता से कुछ पढ़ना लिखना सीखा। जो पुस्तकें मिल जातीं उन्हें बड़े चाव से पढ़ता। १५ वर्ष का हुआ तो खिच्चर पर लाद लाद कर लकड़ियाँ शहर ले जाने लगा। रास्ते में एक पुस्तकालय पड़ता था। उसमें सैकड़ों व्यक्तियों को पुस्तकें पढ़ते हुए देख कर उसका मन बड़ा ललचाता। एक दिन खिच्चर को खड़ा करके वह पुस्तकालय के अधिकारी के पास पहुँचा और निवेदन किया कि वह कोई छोटा काम करने के लिये उसे नौकर रखले। पुस्तकाध्यक्ष ने कृपा पूर्वक उसे झाड़ू लगाने के काम पर नौकर रख लिया। अब उसने खिच्चर लादना माता पर छोड़ दिया और स्वयं नौकरी करने लगा। लेकिन यह काम थोड़े समय और कम पैसों का था इसमें उसकी गुजर न होती, इसलिए कुछ समय के लिए एक जगह धोबी के काम के लिये भी जाने लगा। अब उसकी गुजर होने लगी।

पर वह पेट भरने के लिए जीने वाले हमारे फैशन परस्त नौजवानों की तरह न था, उसने बचे हुए घण्टों में कठोर परिश्रम के साथ पढ़ना शुरू कर दिया। भंगी और धोबी का काम करते करते उसने विलियम कालेज की उच्च परीक्षा पास करली, अपने गुणों के कारण वह २६ वर्ष की उम्र में ही अमेरिका की राज्य सभा का सदस्य बन गया। और इसके बाद अमेरिका का राष्ट्रपति बन गया।

युवको! क्या तुम गारफील्ड से कुछ नहीं सीख सकते

स्वामी रामकृष्ण—
परमहंस के उपदेश।

किसी गाँव में जाते हुए एक महात्मा के पैर से एक मूर्ख का अंगूठा कुचल गया, क्रोधित हो उसने महात्मा को इतना मारा, कि वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। बड़ी कठिनाई से इलाज करने पर एक चेले ने पूछा, ये इलाज करने वाले कौन हैं, साधु बोला, जिसने मुझे पीटा था वह। सच्चे साधु शत्रु और मित्र में भेद नहीं समझते हैं।

माया परमात्मा को ऐसे ढक लेती है जैसे कि बादल सूर्य को ढक लेते हैं। जब बादल हट जाते हैं, तो सूर्य दिखाई देता है। ऐसे ही जब माया हट जाती है, तो भगवान के दर्शन हो जाते हैं।

परमात्मा और जीवात्मा में क्या सम्बन्ध है। जैसे किसी बहते पानी में कोई काष्ट का पट्टा पटकने से उसके दो भाग हो जाते हैं। ब्रह्म में कोई भेद नहीं, परन्तु माया के कारण वे दिखाई देते हैं।

बुलबुला और पानी एक ही वस्तु हैं। वही बुलबुला पानी से बन कर उसी पर तैर कर उसी में मिल जाता है, ऐसे ही जीवात्मा और परमात्मा एक ही हैं। एक छोटा होने से परिमित है, दूसरा अपार है। एक पराधीन, दूसरा स्वाधीन है।

मछली की ताक में बैठे हुए एक बगुला पर एक शिकारी निशाना लगा रहा था। बगुला को पीछे की कुछ चिन्ता न थी। अवधूत बगुला को प्रणाम कर बोला मैं भी आपकी तरह ईश्वर के ध्यान में किसी की तरफ निगाह न करूं।

मैंढक दुम जब झड़ जाती है, तब जल और थल दोनों में रहता है। इसी तरह अज्ञान रूपी अँधेरा जब नष्ट हो जाता है, तब मनुष्य ईश्वर और संसार दोनों में रहता है।

जिस प्रकार सरसों की भरी हुई बोरी फटने से चारों तरफ सरसों फैल जाती है, उसका इकट्ठा करना मुश्किल है। उसी प्रकार सब दिशाओं में फिरने वाले मोह के चक्कर में ग्रथित मन का इकट्ठा करना कठिन हो जाता है।

ईश्वर का भक्त अपने ईश्वर के लिये सब सुखों तथा सब वस्तुओं का परित्याग कर देता है। जैसे कि चींटी चीनी के ढेर में मर जाती है, परन्तु पीछे नहीं लौटती है।

जैसे कि दूसरों की हत्या के लिये तलवारादि की जरूरत पड़ती है और अपने लिये एक सुई की नोंक ही काफी है। इसी तरह दूसरों को उपदेश देने के लिये बड़े २ शास्त्रों की जरूरत है। परन्तु आत्म-ज्ञान के लिये महावाक्य पर दृढ़ विश्वास करना ही काफी है।

जो प्रलोभनों के बीच में रह कर मन को वश में करके पूर्ण ज्ञान प्राप्त करता है, वही सच्चा शूरमा है।

जिस तरह एक भिखारी एक हाथ से सितारा एक हाथ से ढोलक साथ में मुंह से गाता भी जाता है, उसी तरह संसारी जीवो, तुम भी सांसारिक कर्म करो, परन्तु ईश्वर के नाम को न भूल कर उसका भी ध्यान करते रहो।

जिस प्रकार (कुलटा) व्यभिचारिणी स्त्री घर के काम-काज को करते हुए भी अपने दिलदार की याद करती रहती है, उसी प्रकार तुम भी संसार के धन्धों को करते हुए भी ईश्वर का स्मरण करते रहो।

एक बार डुबकी लगाने से अगर मोती न मिले तो यह न कहना चाहिये कि समुद्र में मोती ही नहीं। दुबारा डुबकी लगाओ, मोती जरूर मिलेंगे, इसी तरह ईश्वर एक बार प्रयत्न करने पर न मिलें तो यह न कहना चाहिये कि ईश्वर ही नहीं है। दुबारा फिर प्रयत्न करो।

कुतुबनुमा की सुई हमेशा उत्तर की ओर रहती है। इसीसे समुद्र में जहाजों को अड़चन नहीं पहुँचती। इसी तरह जिसका ध्यान ईश्वर की तरफ है, वह संसार रूपी समुद्र में नहीं भटक सकता है।

ओ मेघ ! वर्षो !

(ऋषि तिरुवल्लुवर)

हे मेघ ! इस पृथ्वी पर जीवधारी इसी लिए जीवित हैं कि समय पर वर्षा होजाती है और सबको जल की शीतलता मिलती रहती है। अन्न की उत्पत्ति जल से ही होती है, और अन्न ही जीवन धन है। हे उपकारी ! तुम्हारे उपकारों से ही संसार की व्यवस्था कायम रहती है। तुम स्वयं कष्ट उठा कर दूसरों को शीतल सहायता पहुंचाते रहते हो, इसी लिए यह विश्व जीवित है।

यदि जल न बर्षे तो इस पृथ्वी पर घोर दुर्भिक्ष फैल जायगा, भले ही उसके चारों ओर समुद्र भरा हुआ है। स्वर्ग के स्रोत शुष्क हो जायेंगे और उपजना बन्द हो जायगा। संसार में सब पदार्थ मौजूद हैं, परन्तु त्यागी तपस्वियों की उदारता बिना वह मरघट जैसा भयंकर होजायगा। त्याग और उदारताके अभावमें विश्वका सारा सौंदर्य नष्ट होजायगा।

मेघ ! जब तुम बरसते हो तो सूखी हुई घास फिर हरी हो जातीहै। हे उपदेशक ! तुम्हारे सदप्रयत्नों से लोगों के टूटे हुए दिल जुड़ जाते हैं, मुरझाई हुई कलियाँ हरी हो जाती हैं।

यदि संसार में दुर्भावनाऐं फैलें समुद्र अपना जल मेघ को देना बन्द करदे या मेघ उस लिये हुए जल को फिर वापिस न लौटावे तो कितना भयंकर दृश्य उपस्थित होगा उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती, परन्तु क्या उदार महानुभाव कभी ऐसा करते हैं ? वे लेते हुए दिखाई देते हैं पर देने के लिए उनका दूसरा हाथ खुला रहता है। वे इधर लेतेहैं और उधर देदेते हैं। हे लोकसेवी ! तुम अपने श्रम से उत्पादन करते हो, पर उस कमाई को दूसरों कोही बाँट देतेहो।

मेघ ! वर्षो ! तुम्हारे वर्षने से ही सबका कल्याण है। उपकारियो ! संसार की भलाई में निस्वार्थ भाव से प्रवृत्त रहो, तभी सौन्दर्य कायम रहेगा। अन्यथा इस भूमंडलमें पाप और स्वार्थ की अग्नि ही धधकती रहेगी। दया और सेवा के कहीं दर्शन नहीं होंगे। इस लिये हे उपकारी मेघ ! वर्षो और निरंतर वर्षते रहो।

सफलता पर दुःख

भारतके माननीय महाभाग गोपाल कृष्ण गोखले जब छोटे थे और पाठशाला की किसी छोटी कक्षा मे पढ़ते थे तब उनके अध्यापक ने उन्हें अंक गणित के कुछ प्रश्न हल करने के लिए दिये। वही प्रश्न कक्षा के अन्य बालकों को भी दिये गये थे।

बालकों में से और कोई उन प्रश्नों को हल न कर सका। किन्तु गोखले के सारे सवाल ठीकथे। उस पर अध्यापक ने उनकी खूब प्रशंसा की और प्रथम श्रेणी के नम्बर दिये।

प्रथम श्रेणी के नम्बर पाकर और प्रशंसा सुन कर बालक गोपाल की आँखें बहने लगीं और वे फूट फूट कर रोनेलगे। इस विचित्र बात का कोईभी कुछ अर्थ न समझ सका। बालक और अध्यापक आश्चर्य में पड़ गये कि एक विद्यार्थी को अपनी सफलता पर प्रसन्न होना चाहिये, किन्तु यह तो उलटा रोता है।

अध्यापक ने उसको पुचकारते हुए रोनेका कारण पूछा बालक गोखले ने रोते-रोते कहा—गुरू जी, इन प्रश्नों को मैंने बेईमानी से हल किया है। ऊँची कक्षा के एक दूसरे विद्यार्थी से चुपके से मैंने इन प्रश्नों के हल पूछ लिये थे और उन्हें ही लिखकर आपके सामने ले आया। अब जब मैं प्रथम श्रेणी के नम्बर प्राप्त कर रहा हूं तो मुझे बड़ा दुख हो रहा है। मैंने आपको धोखा देकर जो सफलता प्राप्त की है उसके लिए मेरे हृदय में बड़ा पश्चात्ताप हो रहा है।

गुरु ने बालक को उठा कर छाती से लगा लिया और कहा—पुत्र ! तेरी आत्मामें सत्य का तेज जाग्रत है। एक दिन तू महा पुरुष होगा। सचमुच एक दिन गोखले ने बड़ा ऊंचा सम्मान प्राप्त किया और वे देश के माननीय नेता कहलाये।

तपस्या और सत्संग

वशिष्ठ और विश्वामित्र की पुरानी शत्रुता अब दूर हो चुकी थी। उदार हृदय के मनुष्यों का मन मुटाव ऐसा नहीं होता जो कभी मिट ही न सके। दुष्ट लोग द्वेष की गांठ पेटमें धरे रहते हैं, पर उदार मनुष्य जब एक बार समझौता होगया तो पुराने द्वेष को निकाल देते हैं।

दोष विश्वामित्र के ही थे। इसलिये उन्होंने वशिष्ठ जी को अधिक संतुष्ट करने के लिये अपने आश्रम में बुलाया और बड़े आदर सत्कार के साथ बहुत दिनों तक अपने यहाँ रक्खा और उन्हें विशेष प्रसन्न करने की भरसक चेष्टा करते रहे। जब वशिष्ठ वापिस अपने घर को चलने लगे तो विश्वामित्र ने अपनी एक हजार वर्ष की तपस्या का फल उन्हें भेट स्वरूप दे दिया।

कुछ दिनों बाद वशिष्ठ ने विश्वामित्र को अपने यहाँ बुलाया और उनकी वैसी ही आवभगत की। जब विश्वामित्र चलने लगे तो वशिष्ठ ने एक घड़ी के सत्संग का फल उन्हें भेट कर दिया।

विश्वामित्र को यह बात अच्छी न लगी कि वशिष्ठ केवल एक घड़ी का सत्संग मात्र उन्हें भेट करें जब कि उन्हें दस हजार वर्ष की तपस्या भेट की गई थी। वशिष्ठ ने उनके मनोभाव ताड़ लिये और उनका संदेह निवारण करने के लिए पाताल लोक चल दिये। उन्होंने विश्वामित्र को भी अपने साथ ले लिया।

दोनों महर्षियों को अपने यहाँ आया हुआ देख कर पाताल पुरी के राजा शेषनाग ने उनका यथोचित सत्कार किया। कुशल समाचार पूछने के बाद शेष जी ने कहा—कहिए भगवन्! मेरे लिये क्या आज्ञा है। विश्वामित्र तो चुप बैठे हुये थे, पर वशिष्ठ जी ने कहा—राजन! हम आपसे यह निर्णय कराने आये हैं, कि दस हजार वर्ष की तपस्या और एक घड़ी का सत्संग इन दोनों में से किसका मूल्य अधिक है?

शेषजी चतुर थे, वे भी सारा मामला ताड़ गये। उन्होंने कहा— आप में से जिसके पास दसहजार वर्ष की तपस्या का फल है वह उस बल के द्वारा एक घड़ी मेरा भार उठावे। वशिष्ठ जी ने विश्वामित्र की दी हुई तपस्या का जोर लगाया, पर वे शेषजी का भार जरा भी न उठा सके। अब उन्होंने विश्वामित्र को बुलाया और एक घड़ी के सत्संग के बल से पृथ्वी उठाने को कहा। विश्वामित्र ने उस बल का उपयोग किया तो भार उठ गया।

शेषजी ने उन्हें समझाया कि सत्संग मूल है और तपस्या पत्ता। सत्संग से मनुष्य की जीवन दिशा का परिवर्तन होताहै और तपस प्रयत्न से पुष्टि मिलती है। यदि बुरे संग से जीवन दिशा पतन की ओर चल पड़े तो तपस्या से उस पतन में ही तेजी आवेगी। इसलिये सत्संग का महत्व सब से अधिक है। श्रेष्ठ पुरुषों के पास बैठने, उनके वचन सुनने, दर्शन करने एवं सद्ग्रन्थों के पठन पाठन से जितना लाभ होता है, उतना लाभ संसार में और किसी साधन से नहीं होता।

दुर्भाग्य छोटे हृदय को दमन कर अपने वश में कर लेता है, परन्तु विशाल हृदय उस पर विजय पाकर खुद से दबा देते हैं।

× × × ×

असफलता के पश्चात् हमें उसी तरह उठकर कार्य करना चाहिये, जैसे पहिले करते थे, सफलता की कुंजी यही है।

× × × ×

हास्यरस हृदय में आनन्द की धारा ही प्रवाहित करके नहीं रह जाता दिल की गाँठों को भी खोलता है।

शक्ति का उपयोग

एक राजा ने किसी वैद्य से दवा बनवाई, जिसे सेवन करने से खूब कामोत्तेजना हो और मनमाना स्त्री भोग कर सके। बहुत धन खर्च करके वह दवा जब तैयार हुई तो राजा ने अपने गुरु के पास उसे परीक्षार्थ भेजा कि इसमें कोई हानिकारक पदार्थ तो नहीं है।

प्राचीन समय में आज कल जैसी वैज्ञानिक रसायन शालाएं न थीं, परन्तु विद्वानों का अनुभव और उनकी परीक्षण शक्ति बड़ी उन्नत होती थी। आज कल किसी वस्तु की परीक्षा यंत्रों की सहायता से होती है, उस समय के विद्वान् अपनी इन्द्रियों द्वारा इस प्रकार के परीक्षण कुछ क्षणों के अन्दर ही कर देते थे। गुरूजी ने थोड़ी सी औषधि चखी और उसमें कोई हानिकारक वस्तु न पाई। दवा जरा स्वादिष्ट थी, इसलिये गुरूजी ने एक दो तोले के ग्रास और भी चख लिये। दूतों ने गुरू जी द्वारा एक दो ग्रास खाने और उनके दवा को हानिरहित बताने का वृत्तान्त राजा से कह दिया।

राजा ने वह दवा उसी दिन से सेवन की तो रात भर काम वासना के मारे वह व्याकुल रहा। अनेक स्त्रियों से रति करने पर भी उसे शान्ति न मिली। प्रातः काल राजा जब दरबार को जाने लगा तो उसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि इस औषधि की कुछ रत्ती मात्रा ही मैंने सेवन की है, तो मेरा यह हाल रहा, किन्तु गुरूजी ने तो इसमें से दो तोले खाइ थी उनका क्या हाल हुआ होगा? राजा को परिणाम जानने की बड़ी उत्कण्ठा हुई और वह दरबार न जाकर गुरूजी के निवास-स्थान पर चल दिया। चुपचाप पहुँच कर उसने देखा कि वे शास्त्रों के अध्ययन में बड़ी तन्मयता से लगे हुए हैं। उनका चित्त बड़ी स्थिरता के साथ अपने कार्य में लगा हुआ है।

राजा ने गुरू के सन्मुख जाकर उन्हें प्रणाम किया। गुरू ने आशीर्वाद देते हुये उनका स्वागत सत्कार किया और तदुपरान्त उससे असमय आने का कारण पूछा। राजा ने अपने चित्त का सारा संदेह कह सुनाया- महाराज! जब दो रत्ती के सेवन से मैं काम वासना के मारे व्याकुल हो रहा हूं, तो दो तोले खा लेने के उपरान्त आपका क्या हाल हुआ होगा?

राजा के अज्ञान पर गुरूजी को हँसी आई। उन्होंने सोचा यह मूर्ख केवल तर्क से न समझेगा इसलिये इसे उदाहरण देकर समझाना चाहिये। उन्होंने राजा से कहा—राजन्! आपका शंका समाधान यथा समय किया जायगा। इस समय आप दो गरीब नौजवान कहीं से पकड़वा मँगाइये। राजा ने अपने नौकरों को वैसा ही आदेश दिया। तदनुसार दो लकड़हारे नव युवक दरबार में उपस्थित किये गये।

गुरूजी ने आदेश किया कि इसके लिये भोजन और आराम का उत्तम प्रबन्ध किया जाय और ब्रह्मचर्य से रखा जाय। जब इन्हें किसी विशेष वस्तु की आवश्यकता हो तो मेरे पास खबर पहुँचवाई जाय। गुरू जी की आज्ञानुसार सारा प्रबन्ध होगया। लकड़हारों को बहुत ही बढ़िया बढ़िया भोजन मिलने लगे और मनोरंजन के सब सामान नृत्य वाद्य उनके सामने उपस्थित किये गये। इस प्रकार कई मास बीत गये। अब वे लड़के खूब हृष्ट पुष्ट होगये थे। संरक्षकों ने उनसे किसी आवश्यकता के लिये पूछा तो उन्होंने इच्छा प्रकट की कि उनका विवाह कर दिया जाय। रोज उनकी यही माँग होने लगी। इसकी सूचना गुरूजी और राजा के पास पहुंचने लगी।

गुरू जी ने राजा के द्वारा उन लकड़हारों से कहलवा-दिया तुम्हें अगले सोमवार को काली के मन्दिर में बलिदान किया जावेगा। इसलिये जो कुछ भी तुम्हारी इच्छा हो पूरी करलो। उसी दिन उन दोनों के लिए सुन्दरी स्त्रियाँ भी उपस्थित करदी

गई। और नौकरों को हिदायत करदी गई कि जो कुछ भी यह माँगे फौरन लाकर उपस्थित किया जाय।

बेचारे लकड़हारे मृत्यु के भय से सन्न रह गये। एक सप्ताह बाद गरदन काटी जायगी, इस भय के मारे उनकी मनोदशा बिलकुल बदल गई। अन्न जल अच्छा न लगता, नाच गान बिलकुल बन्द होगया, दुख और चिन्ता के मारे उनका शरीर कृश होने लगा। जो स्त्रियाँ उनकी सेवा के लिये उपस्थित की गई थीं, वे उनकी ओर निगाह उठाकर भी न देखते। दिन रात शोक में बैठे हुए आँसू बहाते रहते।

इस प्रकार जब दो रोज बीत गये तो गुरूजी राजा को लेकर उन लकड़हारों को देखने पहुँचे। देखा कि उन्हें किसी बात में रुचि नहीं रही है। विवाह के लिये जो दिन रात रट लगाये रहते थे, वे सुन्दरी स्त्रियों की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते तब गुरू ने राजा को समझाया कि राजन्! इन्हें विश्वास हो गया है कि पाँच रोज बाद हमारी मृत्यु हो जायगी, इस भय से इनकी सारी वासनाऐं मर गई हैं। जिन्हें पाँच दिन जीने का भी विश्वास नहीं और हर घड़ी मृत्यु को अपने शिर पर खड़ी देखते हैं, उन्हें कोई भी उत्तेजक दवा उसी प्रकार प्रभावित नहीं करती जैसे कि इन लकड़हारों के सामने बैठी हुई सुन्दरियाँ इनका ध्यान अपनी ओर नहीं खींच पातीं। राजा की शंका का समुचित समाधान होगया। × × × ×

कथा बतलाती है कि दवा शक्ति है। शक्ति और सत्ता प्राप्त करके अज्ञानी और विषयी मनुष्य मदान्ध बन जाते हैं। परन्तु वही शक्ति साधुजनों पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकती, क्यों कि वे जानते हैं कि हमारे मरणशील शरीर का अस्तित्व कितना तुच्छ है और इस क्षणिक जीवन में इतराना कितनी मूर्खता है। धन और वैभव अज्ञानियों को ही पागल बनाते हैं, सन्तजनों के पास यदि संपदा हो तो वे अभिमान नहीं करते, वरन् उनका अच्छे से अच्छा सदुपयोग करते हैं।

आत्म दंड

पिता की हत्या करके खुद राज्य सिंहासन पर बैठा हुआ टर्की का खलीफा मौतासर उन दिनों बड़ा प्रसन्न था। राज सिंहासन मिलने के उपरान्त प्राप्त होने वाले सभी सुख उसे उपलब्ध होने लगे थे। नाचरंग की धूम मची हुई थी।

एकदिन खलीफा मौतासर घोड़े पर सवार अपने साथियों सहित कहीं जा रहा था। जनशून्य स्थानमें उसे एक बहुत बड़ी कब्र दिखाई दी। खलीफा की इच्छा उसे देखनेकी हुई और घोड़ा बढ़ाता हुआ वह उसके निकट पहुंचा। कब्र पर एक पत्थर लगा हुआ था। खलीफा ने उसे ध्यान पूर्वक पढ़ा तो उस पर लिखा हुआ था कि—"मैं सरीज, खुशरो का पुत्र गढ़ा हुआ हूँ इस कब्र के नीचे। लोभ के वश में मैंने राज्य सिंहासन पाया और इसके लिए मरवाया अपने बेगुनाह पिताको। मेरी मौत बनकर आया मेरा कुकर्म और मैं ताज सिर पर न रख सका छै महीने भी। अपने पिता की तरह मैं भी बैठ रहा हूं इस पत्थर के नीचे।"

मौतसर को स्मरण आया कि पाप का क्या परिणाम होना है और उसी के जैसा कुकृत्य करने वाला एक दूसरा व्यक्ति किसप्रकार अकाल मृत्युका शिकार हो चुका है। खलीफा के हृदय में हजार बिच्छुओं के काटने की पीड़ा होने लगी, वह अपने पाप का परिणाम स्मरण कर करके शिर धुनने लगा। कहते हैं कि इस कब्र को देखने के बाद खलीफा सिर्फ तीन दिन ही जिन्दा रहा और रोते रोते मर गया।

× × × ×

पाप करने वाले को उसकी आत्मा ही दंड देने की पर्याप्त क्षमता रखती है। पापी का हृदय सदैव जिस बेचैनी और अशांति से जलता रहता है, वह नारकीय यातनाओं से किसी प्रकार कम नहीं होती। दुरात्मा मनुष्य राज्य दंड से बच सकता है, पर आत्म दण्ड से नहीं बच सकता।

तिब्बत के लामा योगी

(ले०—श्री० विश्वामित्र वर्मा)

डाक्टर अलेक्ज़ेण्डर कैनन, हाँगकाँग (चीन) में नाइट पदवी धारी एक प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं, तथा गुप्त विद्याओं के रहस्यों के गम्भीर अन्वेषक हैं। एक लामा योगी ने उनको निमंत्रण दिया था। अतः वे अपने एक साधु मित्र के साथ लामा योगी के यहाँ आ रहे थे। उन्हें इस यात्रा में तथा जीवन भर में आध्यात्मिक तथा योग के सम्बन्ध में जो अनुभव हुए उनका (Invisible Influence) नामक पुस्तक में उन्होंने लिखा है। उपर्युक्त यात्रा के वृत्तांत में एक स्थान पर वे लिखते हैं—

"जहाँ लामा रहते थे, उस मन्दिर के पास हम पहुँच रहे थे। मन्दिर कुछ ही दूर सामने था। परन्तु रास्ते में हमारे सामने एक बड़ी खाई थी, जिसे हम पार कर ही नहीं सकते थे। वह खाई पचास गज चौड़ी और बहुत गहरी थी। समझदार और अन्तर्दर्शी लामा ने हमारी सहायता के लिये अपना एक दूत भेजा था, जो खाई के किनारे हमें उपस्थित मिला। उस दूत ने खाई पार करने के लिये प्राणायाम, शिथिलीकरण तथा कुछ और ऐसे ही योग के साधन बतलाये। यद्यपि योग के साधनों से हम अभ्यस्त थे, तथापि खाई पार करने के लिये ऐसे साधन करने में उस समय मन ही मन हँसी आई और आश्चर्य हुआ, तथा खाई पार करने के लिये वे साधन हमें वैसे ही प्रतीत हुए जैसे कि मन के लड्डुओं से पेट भरना। दूत ने हमें एक प्रकार का प्राणायाम तथा (Autohypnosis) करने को कहा। आदेशानुसार हमने खाई पार करने की तैयारी इसी साधन द्वारा की। फिर एक क्षण में ही हम दोनों (मैं और मेरे साथी साधु मित्र) खाई के उस पार कुशलपूर्वक पहुँच गये। परन्तु हमारे साथ जो बच्चे थे, वे इसी पार रह गये। हमने उन्हें लौट जाने को आज्ञा दे दी थी। हमने देखा कि हमारा सामान भी उसी पार पड़ा हुआ था।"

फिर जब डाक्टर कैनन लामा योगी के यहाँ पर कुछ सप्ताह पश्चात् लौटे तो खाई पार करते समय पुनः वैसी ही घटना हुई। जब भरी सभा में लामा ने डाक्टर साहब का स्वागत किया, उस समय ब[illegible] उनका अनुभव और भी अजीब है। लामा बैठे हु[illegible] थे और उनके शरीर के चारों ओर तीन फीट के घेरे में नीले रंग का तेजस् था। फिर कफन में लपेटा हुआ एक मृत मनुष्य का शरीर लाया गया। डाक्टर साहब को उस शरीर को देखने जाँचने की अनुमति दी गई। परीक्षा करने पर डाक्टर साहब को मालूम हुआ कि उस मनुष्य को मरे चौबीस घण्टे से अधिक समय बीत चुका है। इसके पश्चात् लामा के आज्ञा देते ही उस मरे हुए मनुष्य ने आँखें खोलीं, फिर वह उठ कर खड़ा हो गया और दो साधुओं की सहायता से लामा की दृष्टि से अपनी दृष्टि मिला[illegible] हुए लामा के पास तक गया और प्रणाम कर वापस आकर पुनः कफन में जाकर 'मरा' हो गया।

इस आश्चर्य को देख कर डाक्टर साहब के मन[illegible] यह प्रश्न उठा कि यह प्राणायाम और राज यो[illegible] युक्त साधन की कोई घटना है, अथवा और कुछ है[illegible] उन्होंने प्रश्न किया ही नहीं कि इतने में बिना कु[illegible] पूछे या सुने ही, मानो (Telepathically विचारों द्वारा ही लामा को डाक्टर साहब के मन[illegible] विचार मालूम हो गये हों, लामा ने उत्तर दिया [illegible] यह मनुष्य सात वर्ष से मरा हुआ है तथा अग[illegible] सात वर्षों तक भी इसी प्रकार सुरक्षित मृत अवस[illegible] में रह सकता है। इसकी आयु कई सौ वर्षों की [illegible] तथा और भी कई सौ वर्षों तक यह इसी प्रक[illegible] जिन्दा रह सकता है।

तब डाक्टर साहब ने प्रश्न किया कि इसके शरी[illegible] के गुप्त मन और आत्मा कहाँ हैं? जाँच करने [illegible] तो यह मालूम पड़ा। लामा ने उत्तर दिया कि इसक[illegible] आत्मा और मन खास कार्यों के लिये पृथ्वी [illegible] सर्वत्र (Special Missions) भेजा जाता है[illegible] खाई पार करने में जिसने आपको सहायता दी [illegible] वह यही दूत था।

लौटते समय भी जब दूत खाई पर उपस्थि[illegible] था तब डाक्टर साहब ने प्रश्न किया—'मुझे जीव[illegible]

अपने पैर में जूता पहनो

एक व्यक्ति बड़ा भावुक था। उसके मन पर बाहर की घटनाओं का बड़ा प्रभाव पड़ता और वह संसार के उद्धार के सम्बन्ध में बहुत कुछ सोचता रहता। एक दिन उसे कहीं दूर देश की यात्रा पर जाना पड़ा। जिस रास्ते वह गया था, वह बड़ा ही कठिन और कष्टप्रद निकला। चारों ओर उसमें कटीली झाड़ियाँ उगी हुई थीं और उनके कांटे गिर-गिर कर सारी भूमि पर फैल गये थे, जिससे उस रास्ते से निकलना बड़ा कठिन था। सुखपूर्वक यात्रा करने वालों के पैर उस रास्ते के कुश-कंटकों से घायल हो जाते। उसे स्वयं भी जब उसी रास्ते हो कर जाना पड़ा तो उसके भावुक हृदय को बड़ा दुख हुआ।

वह सोचने लगा यदि इस जंगल की सारी भूमि चमड़े से ढक दी जाय तो कैसा अच्छा हो? फिर कहीं कुश-कंटक न रहेंगे और मार्ग सुगम हो जायगा। इस कल्पना में प्रसन्न होता हुआ वह जा रहा था, कि रास्ते में उसे अपने एक अनुभवी मित्र से भेंट हुई। मित्र को देख कर वह बहुत प्रसन्न हुआ और अपनी योजना उसे समझाते हुए पूछा कि चमड़े से सारी भूमि को ढक कर कुश-कंटकों से रहित बना देना कितना उत्तम होगा?

मित्र उसकी बात सुन कर हँसा और प्रेम पूर्वक कहा—मेरे प्यारे भाई! तुम्हारा विचार बहुत ही सुन्दर और सहृदयतापूर्ण है, परन्तु यह काल्पनिक है, व्यावहारिक नहीं। तुम सारी पृथ्वी के कर्ता नहीं हो और सारी कठिनाइयों को उठा देना तुम्हारी शक्ति से बाहर है। तुम अपने पैरों में जूते पहनो और कुश-कंटकों को कुचलते हुए आगे बढ़ो। इसी प्रकार यदि दूसरों को सुख मार्ग तैयार करना चाहते हो, तो उन्हें भी जूता पहनने के लिये कहो। इस तरह कठिन मार्ग सरल हो जायगा।

संसार में बहुत सी बुराइयाँ हैं। अनेक सहृदय और भावुक सज्जन चाहते हैं कि संसार बिलकुल विशुद्ध और पवित्र बन जाय। यह नहीं हो सकता। राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद आदि सब ने प्रयत्न किया, पर संसार जहाँ का तहाँ है। इसमें बुराइयाँ और भलाइयाँ दोनों ही रहेंगी। उपकारी मनुष्य दूसरों की सबसे बड़ी भलाई यह कर सकते हैं, संसार के कष्टों का निवारण इस प्रकार कर सकते हैं कि स्वयं भले बनें और दूसरों को भले बनाने का प्रयत्न करें। यदि हम स्वयं भले बन जाँय, अपनी बुराइयों को शुद्ध कर डालें तो संसार की बहुत सी बुराइयाँ दूर हो सकती हैं। किन्तु यदि हम उस भावुक व्यक्ति की भांति स्वयं तो नंगे पैर यात्रा करें और भूमि को चमड़े से ढक देने की बात सोचें, तो वह केवल कल्पना-जगत् में विचरण करना होगा। उत्तम यह है कि हम पहले आत्म-सुधार करें, अपने को बुराइयों से रहित बनावें और दूसरों को वैसा ही बनाने का प्रयत्न करें, इस प्रकार हम संसार की सर्वोत्तम सेवा कर सकेंगे।

नें ऐसे अजीब अनुभव क्यों हो रहे हैं? दूत ने ठाकुर साहब की त्रिकुटी पर दृष्टि जमाते हुए प्रेम से उत्तर दिया—'हम लोग आज-कल की आधुनिक स्थिति के अनुसार आपका मूल्य नहीं आँकते, हम तो आपकी विमूढ़ शक्तियों के अनुसार आपकी जाँच करते हैं। हमें तो आपके भविष्य से प्रयोजन है। आपके भविष्य में यह बात अंकित है और आपको श्रद्धा पूर्वक इस मार्ग का अनुसरण करने से कोई रोक नहीं सकता।'

इसके अतिरिक्त ठाकुर साहब ने और भी अजीब घटनाएं देखीं। —कल्याण।

अखण्ड-ज्योति के लेख।

ऐसा समझा गया है कि लेखों की अपेक्षा कथाओं द्वारा शिक्षा देना अधिक महत्वपूर्ण है। अतएव इस अङ्क से आगे शिक्षाप्रद कथाऐं और महापुरुषों के दिव्य वचन विशेष रूप से रहा करेंगे। आशा है कि पाठक इसे पसन्द करेंगे। आध्यात्मिक साधनाओं को पत्रिका में प्रकट करने की अपेक्षा पुस्तकों द्वारा बताना उपयुक्त समझ कर साधना विषय पुस्तकों के रूप में और ज्ञान प्रसार कर अखण्ड-ज्योति द्वारा हुआ करेगा। —सम्पादक।

संगठन और लक्ष्मी

(श्री मङ्गलचन्द भंडारी, 'मङ्गल' अजमेर)

सेठ जी पर लक्ष्मी की कृपा थी। उनका व्यापार व्यवसाय अच्छी उन्नति कर गया था। लाखों करोड़ों का कारोबार होता था, तिजोरियाँ सोने चाँदी से सदा भरी रहतीं। ईश्वर की कृपा से उन्हें चार सुन्दर पुत्र प्राप्त हुए थे। चारों ही एक से एक बढ़ कर चतुर थे। घर सब प्रकार के आनन्दों से परिपूर्ण था।

बेटे बड़े हुए और उनके धूम धाम के साथ विवाह किये गये। बहुँ अपने साथ खूब दान दहेज लाईं। सेठ जी और सेठानी प्रसन्नता से फूले न समाते थे।

समय का चक्र बड़ा प्रबल है। आज जहाँ आनन्द है, कल वहाँ दुख हो सकता है, आज जहाँ बाग है, कल वहाँ मरघट हो सकता है। सेठ जी के आनन्द से भरे हुए घर में भी विनाश की छाया झाँकने लगी। बहुओं में मनमुटाव बढ़ने लगा। सम्मिलित रहने का एक ही सिद्धान्त है कि हर मनुष्य अपने सुख की अपेक्षा दूसरे का अधिक ध्यान रखे, किन्तु जहाँ 'आपापूती' शुरू हो जाती है, अपने लिये अधिक लेने और दूसरे को कम देने की प्रवृत्ति चल पड़ती है, वहाँ साझा नहीं चल सकता। एक न एक दिन कलह और विद्रोह जरूर पनप उठेगा। बहुओं में कुछ ऐसे ही विचार घर करने लगे थे। हर एक अपने लिए अधिक सुख चाहती थी और दूसरों की उपेक्षा करती थी। फल स्वरूप घर में लड़ाई के बीजांकुर बढ़ने लगे। स्त्रियों के मन मुटाव की छूत पुरुषों में पहुँची और वे भी एक दूसरे से असन्तुष्ट रहने लगे। भीतर ही भीतर सब में रोष था, कभी कभी वह लड़ाई के रूप में बाहर भी प्रकट होने लगा।

जहाँ कार्यकर्ताओं के चित्त में उद्विग्नता है, वहाँ कार्य ठीक प्रकार पूरा नहीं हो सकता और व्यापारी के काम अधूरे और कच्चे पड़े रहते हैं, उसको घाटा होना निश्चित है। जैसे जैसे कलह बढ़ने लगा वैसे ही वैसे व्यापार में घाटा भी बढ़ने लगा। दिन दिन आर्थिक दशा कमजोर होने लगी।

एक दिन सेठ जी ने स्वप्न देखा कि दिव्य रूप धारण किये हुए तेज मूर्ति लक्ष्मी जी उनके घर को छोड़ कर अन्यत्र जाने की तैयारी कर रही हैं। और मन्द स्वर से कर रही हैं—"पुत्र, मैं तेरे यहाँ बहुत दिन रही पर अब यहाँ नहीं रहूँगी।" सेठजी लक्ष्मी के अनन्य सेवक थे। जीवन भर उन्होंने उसी की उपासना की थी, जब उन्होंने यह देखा कि मेरी संपदा जा रही है, वेदना से तड़फड़ा कर वे लक्ष्मी के चरणों में लोट गये और फूट फूट कर रोने लगे। लक्ष्मी को उन पर दया आ गई। उनने कहा—पुत्र, मेरा जाना तो निश्चय है, पर तेरी भक्ति को देख कर एक वरदान तुझे दे सकती हूं। मुझे छोड़ कर अन्य जो वस्तु चाहे सो तू माँगले।

स्वप्न में ही सेठ जी ने कहा—माता इस समय मेरा चित्त स्थिर नहीं है। मैं शोक से व्याकुल हो रहा हूं, इसलिए क्या माँगू क्या न माँगू इसका ठीक निर्णय नहीं कर सकता। आप कल तक का अवसर मुझे दें। कल मैं माँग लूंगा। लक्ष्मी जी दूसरे दिन फिर स्वप्न में दर्शन देने का वचन देकर अन्तर्ध्यान हो गईं। सेठजी का स्वप्न टूटा तो उनका कलेजा धकधका रहा था।

प्रातःकाल सेठ जी ने अपने सब पुत्रों और पुत्र बधुओं को बुलाया और रात के स्वप्न का सारा हाल कह दिया। उस जमाने में लोगों के मन अधिक गंदे न होते थे, इसलिये उन्हें जो दिव्य स्वप्न दिखाई देते थे वे प्रायः सत्य ही होते थे। सब को विश्वास हो गया कि स्वप्न सत्य ही है। अब सब विचार करने लगे कि लक्ष्मी जी से क्या माँगना चाहिए। लड़कों में से किसी ने कोठी, किसी ने मोटर, किसी

ने कुछ किसी ने कुछ माँगा । इसी प्रकार बेटों की बहुएँ भी संतान, आभूषण, महल आदि माँगने लगीं । किन्तु छोटे बेटे की बहू ने नम्रता पूर्वक कहा–पिताजी मेरी सलाह तो यह है कि आप 'ऐक्य' का बरदान माँगे । हम लोग चाहे जिस परिस्थिति में रहें पर सब में प्रेम बना रहे और सब मिल जुल कर रहें ।

छोटी बहू की बात सेठ जी को पसन्द आगई । रात को उन्होंने लक्ष्मी जी से यही बरदान माँगा कि–माता ! हम लोग चाहे जैसे दुख सुख में रहें, परन्तु सब में प्रेम भाव बना रहे सब मिल जुल कर रहें । लक्ष्मी इस याचना को सुन कर अवाक् रह गई । उनने कहा–यही तो मेरे जाने का कारण था । कलह और द्वेष के कारण ही तो मैं तुम लोगों के यहाँ से जा रही थी पर जब तुम्हें यह वरदान दूंगी तो किस प्रकार जा सकूँगी ? लक्ष्मी जी बचन बद्ध थीं, उन्हें यह बरदान देना पड़ा । परन्तु साथ ही अपने चले जाने का विचार भी छोड़ देना पड़ा । क्योंकि जिस परिवार में प्रेम और सङ्गठन है, लक्ष्मी उसे छोड़ कर जा ही नहीं सकती ।

× × × ×

समझा जाता है कि पैसे के अभाव में गृह-कलह होते हैं, यदि घर में खूब पैसा हो तो लड़ाई झगड़े न होंगे । परन्तु यह धारणा भ्रमपूर्ण है । गरीबी में भी हम प्रेम और सङ्गठन के साथ रह सकते हैं । यदि आपस के सम्बन्ध सुहृदयता पूर्ण और निस्वार्थ रहें, तो अवश्य ही धन वैभव की वृद्धि हो सकती है इसके विपरीत कहल से बड़े बड़े धन पति भी भिखारी बन जाते हैं ।

अन्य आश्रमों की उज्वलता का आधार ब्रह्मचर्य की पवित्र साधना पर निर्भर है । इसलिये आध्यात्मिक दृष्टि से यह आश्रम मुख्य है । इसके लुप्त हो जाने से हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति की बड़ी क्षति हुई है । प्रत्येक हिन्दू का कर्तव्य है कि इस आश्रम को तेज पूर्ण बनावे । –म० गाधी ।

सुखके उच्च शिखर पर

(महात्मा जेम्स ऐलन)

अपने मस्तिष्कको दृढ़, निष्पक्ष तथा उदार भावों की खान बनाइए, अपने हृदय में पवित्रता, उदारता और योग्यता लाइए, अपनी जबान को चुप रहने तथा सत्य और पवित्र भाषण के लिये तैयार कीजिए पवित्रता और शान्ति प्राप्त करने का यही मार्ग है और अन्त में प्रेम भी इसी तरह प्राप्त किया जा सकता है । इस प्रकार जीवन बिताने में आप दूसरों पर विश्वास जमा सकेंगे । उनको अपने अनुकूल बनाने की आवश्यकता न होगी । बिना विवाद के आप उनको ज्ञान दे सकेंगे । बिना अभिलाषा तथा चेष्टा के ही बुद्धिमान लोग आपके पास पहुँच जावेंगे और लोगों को अनुभूत करने का उद्योग किये बिना ही आप उनके हृदय को वशीभूत कर लेंगे । क्योंकि प्रेम सर्वोपरि सबल और विजयी होता है । प्रेम के विचार कार्य और भाषण कभी नष्ट नहीं होते ।

जिस तरह से प्रभात की किरणों से अपने लाभ के लिए पुष्प अपनी पंखुड़ियाँ खोलता है, उसी तरह से सत्य के ओजस्वी प्रकाश को प्रवेश कराने के लिए अपनी आत्मा को बराबर खुल कर विकसित होने दीजिए । उच्च अभिलाषाओं के पंखों पर चढ़ कर ऊपर उड़िए, निर्भीक होइए और उच्च से उच्च बातों की संभावना में विश्वास कीजिए । विश्वास रखिए कि बेदाग और पवित्र जीवन संभव है और पूर्ण शुद्धता के साथ जिन्दगी व्यतीत करना भी सम्भव है ।

दूसरों की भलाई में अपने को नष्ट कर दीजिए । जो कुछ आप करते हैं, उसी में अपने को भुला दीजिए । यही अपरिमित सुख की कुंजी है । स्वार्थ-परता में बचने का सदैव ख्याल रखिये विश्वास के साथ अन्तःकरण से त्याग करने का दिव्य पाठ सीखिये । इस प्रकार आप सुख के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच जाँयगे और अमरत्व की चमकीली चादर ओढ़ कर पूर्ण सुख से सर्वदा धन रहित प्रकाश में अपना जीवन बिता सकेंगे । ———

दूसरों की सेवा क्यों करें ?

एक दिन शरीर की कर्मेन्द्रियों ने सोचा कि हम लोग परिश्रम करते करते मरे जाते हैं और यह पेट हमारी कमाई को यों ही मुफ्त में हजम करता रहता है। हाथ, पाँव, आंख, कान आदि ने इस बात पर बड़ा असंतोष प्रकट किया कि हम दिनभर पिसते हैं फिर क्या कारण है कि दूसरे हमारे परिश्रम का फल भोगें और हम यों ही रह जावें। यदि हम कमावेंगे तो हमी खावेंगे अन्यथा काम न करेंगे, और हड़ताल करके बैठे रहेंगे।

पेट ने सब अंगों को बुलाया और समझाया कि पुत्रो! मैं तुम्हारी कमाई को खुद नहीं रख लेता हूँ, जो कुछ तुम मुझे देते हो उसे बड़े परिश्रम के साथ तुम्हारी शक्ति बढ़ाने के लिये द्रव्य बनाता हूँ और उसे तुम्हारी ही भलाई में खर्च करता रहता हूँ। यह क्रिया तुम्हें आँखों से नहीं दीखती, फिर भी विश्वास रखो तुम्हारा परिश्रम अप्रत्यक्ष रूप से तुम्हें ही वापिस मिल जाता है। इसलिये हड़ताल मत करो, वरन् अधिक उत्साह पूर्वक काम करो जिससे मैं तुम्हें अधिक लाभ पहुँचा सकूं और हृष्ट पुष्ट तथा बलवान बना सकूं।

यह बात किसी इन्द्रिय की समझ में न आई। उन्होंने कहा तुम पूंजी पति हो, ऐसी ही मीठी मीठी बातें बना कर हमारा शोषण करते रहते हो। हम तो अब अपना परिश्रम स्वयं ही लेंगे, वरना हड़ताल करेंगे। बेचारा पेट बहुत समझाता बुझाता रहा, पर उसकी किसी ने एक न सुनी और सबने अपना अपना काम छोड़ दिया।

जब सब अंगों ने काम करना ही बन्द कर दिया, तो भोजन पेट में कैसे पहुँचता। निदान् पेट भूखा रहने लगा। क्षुधा ज्वाल से शरीर के रस रक्त सूखने लगे और अंगों की शक्ति नष्ट होने लगी नेत्रों के आगे अंधेरा छाने लगा, कानों में सुनन सुनन की आवाज होने लगी, पैरों की भड़कन बढ़ गई, हाथों का उठना भी कठिन होगया। थकान और बेचैनी के मारे सारे अवयव घबराने लगे।

तब मस्तिष्क ने इन्द्रियों से कहा—मूर्खो तुम्हारा परिश्रम कोई नहीं खाजाता। वह लौट कर तुम्हें ही वापिस मिलती है। यह मत सोचो कि दूसरों की सेवा करके हम घाटे में रहते हैं। ऐसा ख्याल नासमझी के कारण ही होता है, असल में जो कुछ तुम दूसरों को देते हो वह ब्याज समेत तुम्हारे पास वापिस लौट आता है। अपना कर्तव्य करो—फल तो ईश्वर तुम्हें दे ही देगा।

हड़ताल करने के बाद इन्द्रियों की समझ में आगया कि दूसरों के साथ की गई भलाई बेकार नहीं जाती। वह लौट कर फिर हमारे पास आजाती है। परोपकार करना मूर्खता नहीं, बुद्धिमानी है क्यों कि इसका फल जितना दूसरों को मिलता उसका कई गुना स्वयं हमें ही मिल जाता है।

प्रसन्न रहना परम कर्त्तव्य है, हम यदि स्वयं प्रसन्न रहते हैं तो संसार का महान् उपकार करते हैं।

× × × ×

हँसी वह तैल है जिसके बिना जीवन रूपी दीपक बुझ जाता है।

× × × ×

किसी दोष पर हम सहृदयता और हास्य से हँसें और अपराधी को भी हँसायें, तो सहज ही बिना मनोमालिन्य के सुधार हो सकता है।

कहां बैठूं!

(श्री सत्य भक्तजी संपादक 'नई दुनियाँ')

(१)

मनमाँड़ से गाड़ी चली ही थी, मेरी बगल में कुछ हिन्दू बैठे थे, थोड़ी देर बाद आपस में ही चर्चा चल पड़ी। चर्चा इस बात पर थी कि इस्लाम को और मुसलमानों को इस देश से बाहर कैसे निकाला जाय? बड़ी बड़ी बातें हो रही थीं, उनका सार इतना ही था, कि मुसलमान इस तरह शैतान हैं, इसलाम में ये खराबियाँ और वे खराबियाँ हैं। मैं उनकी बातें सुनते सुनते ऊब गया। जब स्टेशन आया, तो उतरने के लिये उठा। एक भाई ने पूछा-क्या आप येवला उतरिएगा!

मैं—नहीं, मैं दूसरे किसी ऐसे डब्बे में जा रहा हूँ वहाँ हिन्दू बैठे हों।

उनमें से एक-भाई बिगड़कर बोले-क्या आप हमें हिन्दू नहीं समझते?

मैंने जरा खेद बतलाते हुए कहा, आप ही बतलाइये मैं आपको हिन्दू कैसे समझूं? हिन्दू धर्म तो वह धर्म है, जिसमें करोड़ों तरह के देवताओं के स्थान हैं, आस्तिक और नास्तिक सारे दर्शन जिसके भीतर हैं, पशुबलि से लेकर पानी छानने तक सब तरह की कुर्बानी जिसमें है, आर्य और अनार्य, शक और हूण सब का रक्त जिसमें समाया हुआ है, जिसने हिन्दू के भीतर आई हुई हरएक जाति, हरएक मजहब और हरएक सभ्यता को मिलाकर एक कर लिया है, वही तो हिन्दू है। आप लोगों की बातों से मैं नहीं समझ सका कि हिन्दुत्व का सौवां टुकड़ा भी आप लोगों के भीतर है। इसलिये माफ कीजिये अब मैं दूसरे डब्बे में ही जाऊंगा।

(२)

दूसरे डब्बे में पहुँचा, वहाँ कुछ मुसलमान सज्जन बैठे हुये थे, उनकी कुछ बातें चल रही थीं, मुझे देख कर पहले तो वे लोग कुछ चुप से हो गये, लेकिन मैंने किताब पढ़ने का कुछ ऐसा डौल किया कि उन लोगों को यह विश्वास हो गया कि उनकी बातों पर मेरा ध्यान नहीं है। वे लोग पाकिस्तान बनाने की फिक्र में थे और इस तरह बहस कर रहे थे कि मानों इस बहस में पाक-स्थान बनाना तय हो जाय, तो ब्रिटिश सरकार और खुदाबन्द करीम को पाकिस्तान बनाने में कोई अड़चन न रह जायगी।

एक भाई बोले—पाकिस्तान बन जाने पर हम हिन्दुओं को अच्छी तरह देख लेंगे, इन काफिरों की अक्ल ठिकाने ला देंगे। फिर देखें राम, कृष्ण की सवारी कैसे निकल पाती है, मन्दिरों में पूजा कैसे हो पाती है। उनकी बातें सुनकर मेरा दिल खिन्न हो गया और दूसरे डब्बे में जाने की सोचने लगा। मुझे उठता हुआ देख कर कुछ संतोष के साथ एक भाई ने पूछा, क्या आप बलापुर तशरीफ ले जाइएगा।

मैंने कहा—नहीं जनाब, मुझे जाना तो दूर है पर मैं किसी ऐसे डब्बे में बैठना चाहता हूँ, जहाँ मुसलमान बैठे हों।

वे लोग चौंके, उनमें से एक साहब बोले, यह आप क्या फरमा रहे हैं, हम लोग तो मुसलमान ही हैं।

मैंने कहा—माफ कीजिये, इसलाम को मैं जहाँ तक समझ सका हूँ, उसके माफ़िक जैसा मुसलमान होना चाहिये, आप लोग ठीक उससे उलटे हैं। इस्लाम का तो कहना है कि हर मुल्क और हर क़ौम में खुदा ने पैग़म्बर भेजे हैं। मुसल-मान किसी में फर्क नहीं कर सकता। वे तो जैसे मुहम्मद साहब को मानते हैं, वैसे ही ईसा, मूसा, इब्राहीम, राम, कृष्ण वगैरह सभी को मानते हैं। राम, कृष्ण की सवारी के नाम से चिढ़ने वाले आप लोग मुसलामन कैसे हो सकते हैं। इस तरह तो मुल्क का अमन नष्ट हो जायगा। इस्लाम का

मतलब तो अमन या शान्ति है। जब आप इस्लाम के नाम पर ही अमन की बर्बादी करेंगे तो आप मुसलमान कैसे कहला सकेंगे ! इसलिए आप लोग आराम से बैठिये, मैं दूसरे कम्पार्टमेंट में चला जाता हूँ ।

(३)

नये कम्पार्टमेंट में एक एक पादरी महाशय अपने भक्तों को लिये बैठे थे । वे सब ईशुकी वाणी सुनाने के लिये अहमद नगर जा रहे थे। पर उनका प्रचार रेल में भी चालू था, वे कह रहे थे–बपतिस्मा लेने के सिवाय पाप से और नरक से बचने का कोई रास्ता नहीं। इस देश के लोग बड़े नासमझ हैं। हम इनके उद्धार के लिये करोड़ों रुपया खर्च करते हैं पर ये कुछ नहीं समझते । अगर इस मुल्क के सब आदमी ईसाई हो जाँय तो कोई झगड़ा फिसाद न रहे। ये लोग परमात्मा के पुत्र को छोड़ कर झूठे देवताओं को पूज कर दोजख की तैयारी कर रहे हैं।

वे बड़े जोश से पाप-मुक्ति का सन्देश पास में बैठे हुए आदमियों को सुना रहे थे। यहाँ भी मुझे चैन न मिला और जब मैं उतरने को हुआ तो पादरी सा० ने पूछा क्या आपका स्टेशन आगया। मैंने कहा--जी नहीं, स्टेशन तो काफ़ी दूर है, पर मैं दूसरे कम्पार्टमेंट में जारहा हूं, शायद वहां कोई ईसाई लोग बैठे होंगे, तो उनके पास बैठूंगा, या किसी दूसरे धर्म वाले के पास बैठूंगा, क्यों कि ईसाई का मिलना सबसे ज्यादह मुश्किल है।

पादरी सा० मुस्करा कर बोले, क्या आपने अभी तक मेरी बातें नहीं सुनीं ! मैं खुद ईसाई हूँ, ईसाई धर्म का प्रचारक हूं, मुझ से बढ़ कर ईसाई आपको कहाँ मिलेगा !

मैंने कहा—हो सकता है कि न मिले, पर इसका मतलब यही होगा कि आज दुनिया में ईसाई नहीं है। आपकी सब बातें मैंने सुनी हैं, इसलिए मुझे भी ईसाई का मिलना मुश्किल मालूम होता है। ईसाई मजहब को जितना समझा है, उसके आधार पर मैं कह सकता हूँ, कि यह तो प्रेम और सेवा का मजहब है। पर आज तो बात उलटी ही है। आप कहते हैं, यह मुल्क ईसाई हो जाय, तो सब झगड़े शान्त हो जायें, पर सारा योरोप तो आज ईसाई है, लेकिन वहाँ जैसा कहर बरस रहा है वैसा दुनियाँ के किस देश में बरस रहा है ? ईसाइयों ने प्रोटेस्टेन्ट और कैथोलिक बनकर परस्पर में करोड़ों आदमियों का जिस निर्दयता से खून बहाया है, उसे देखकर कौन कह सकता है कि आज इस दुनिया में ईसाई हैं, या पिछले सैकड़ों बरसों से रहे हैं अगर ईसाई होते, तो दुनिया में साम्राज्य-वाद न होता, रणचंडी का नंगा नाच न होता, आदमी की शक्ति एक दूसरे को लूटने में नहीं, किन्तु सेवा करने में खर्च होती ।

मेरी बात सुनकर पादरी महाशय का मुंह कितना फीका हो गया, इसकी परवाह किये बिना मैं डब्बे से उतर पड़ा और दूसरे डब्बे में जा बैठा।

(४)

अबकी बार मैं जिन लोगों के बीच में पहुंचा वे अपने को जैनी कहते थे । अपने किसी मुनि के दर्शनों के लिये कहीं जा रहे थे। कह रहे थे, धर्म तो बस है तो जैन है, बाकी सब पाखण्ड है, मिथ्यात्व है। इस धर्म में जैसी वैज्ञानिकता है, वैसी किसी में नहीं। दुनिया विषयों में फँसी है, इसलिये वह इस वीतराग धर्म को नहीं चाहती। जगत के करोड़ों आदमी मिथ्यामतों में फंसकर नरक और निगोद में जाँयगे, सो जायें अपना क्या कर सकते हैं। जैसी भवितव्यता होगी, वैसा ही होगा।

उनकी बातें सुन कर मैं आँखें फाड़ फाड़ कर उन्हें देखने लगा, सोचा, क्या ये सच-मुच जैन है ? कपड़े तो बड़े चमकीले हैं, गहने भी कुछ कम नहीं हैं, क्या ये महावीर की निष्परि-ग्रहता के पुजारी हैं। उनकी बातों में मुझे अने

कान्त की थोड़ी भी गंध न आई। मुझे उनका दंभ और एकान्तवाद देख कर कुछ घृणा सी होने लगी और मैं डब्बा बदलने के लिये उतरने की तैयारी करने लगा। इतने में उनमें से एक ने पूछा, क्या आप यहाँ उतरिएगा?

मैंने कहा—सफ़र तो लम्बा है, पर मैं चाहता हूँ, कि थोड़ी देर जैनियों की संगति में काटूँ?

वे हँसे! बोले—साहब, जैन ढूंढने के लिये कहाँ जाते हैं? हम सब जैनी ही जैनी हैं!

मैंने अचरज का भाव दिखाते हुए कहा क्या आप लोग जैनी हैं, निष्परिग्रहता के अवतार महावीर स्वामी के पुजारी हैं! तीन सौ तिरेसठ मतों का समन्वय करने वाले, अनेकान्त को मानने वाले? मेरे ख्याल में तो एकान्तवाद ही पाखंड हैं, मिथ्यात्व हैं। अगर आप सब धर्मों का समन्वय नहीं कर सकते, देश का विचार करके अब धर्मों के विधि विधानों पर अनेकान्त दृष्टि नहीं डाल सकते, अर्थ-भेद का समन्वय दूर रहे, अगर नाद भेद का भी समन्वय नहीं कर सकते, तो आप कैसे अनेकान्ती हैं। कैसे जैनी हैं। आप तो धर्म की महत्ता की ओट में अपने अहंकार की पूजा कर रहे हैं आप अहंकार को नहीं जीत पाये। इतना ही नहीं आप अहंकार को जीतना भी नहीं चाहते, फिर आप जैन कैसे? जो अहंकार आदि आत्म-शत्रुओं को जीत चुका है, वह जिन है और जो जीत रहा है या जीतना चाहता है, वह जैन है। अब मैं नहीं समझ सका कि आप क्या हैं? और कुछ भी हों पर जैन तो नहीं हैं। यह कह कर उनके उत्तर की परवाह किये बिना डब्बे से उतर पड़ा।

(५)

वहां से उतरकर मैं एक ऐसे कम्पार्टमेंट में पहुंचा जिसमें कुछ पारसी कुटुम्ब बैठे थे। मैंने दरवाजा खोला ही था कि सब के सब एक साथ चिल्लाये-यहाँ जगह नहीं है, यहाँ जगह नहीं है। मैंने सोचा—ऐसे लोगों के पास बैठने में क्या लाभ है? मैं और आगे बढ़ गया।

देखा एक छोटा सा कम्पार्टमेंट खाली पड़ा है मैं उसके भीतर पहुँचा। एक बौद्ध भिक्षु एक खाली बैंचकर लेटे थे। मेरे पहुँचते ही उनने उठ कर स्वागत किया। बोले—आइये, यहां काफी जगह है।

मैंने कहा—ईश्वर की दया है कि आपका साथ मिल गया।

ईश्वर का नाम सुन कर भिक्षु जी ऐसे चौंके जैसे कोई कट्टर मुसलमान मूर्ति का नाम सुन कर चौंक पड़ता है। बोले इस कमबख्त ईश्वर ने दुनिया का जितना नाश किया है उतना किसी ने नहीं किया। जो ईश्वर का गुलाम है वह दुनिया का गुलाम है। जब तक लोग ईश्वर के पीछे पड़े हुए हैं तब तक उनका उद्धार नहीं हो सकता।

मैंने कहा—कमसे कम आप तो ईश्वर के पीछे न पड़िये।

वे बोले—मैं? मैं ईश्वर के नाम पर धिक्कार करता हूँ मैं क्यों उसके पीछे पडूंगा। मैं बौद्ध हूँ बुद्ध का अनुयायी, बुद्धि का बच्चा। मुझे ईश्वर से कोई मतलब नहीं।

मैं—अच्छा हो यदि आप उसके कोई मतलब न रक्खें। लेकिन आप उनका इतना विरोध करते हैं कि दिन रात वही आपकी आँखों के सामने घूमता रहता है, इससे बढ़कर मतलब और क्या होगा।

भिक्षु—कुछ भी हो पर मैं ईश्वर सरीखे किसी अस्तित्व को महत्व नहीं देना चाहता।

मैं—होना यही चाहिये और म० बुद्ध की नीति भी यही थी। उनके लिये ईश्वर परलोक आदि तत्व नहीं थे, किन्तु चार आर्य सत्य तत्व के दुनिया के दुःख दूर करने से उन्हें मतलब था, और आपको मतलब है ईश्वर के बहिष्कार से यह तो म० बुद्ध का मार्ग नहीं है।

मेरी बात सुन कर भिक्षु जी चुप तो होगये पर प्रसन्न न रह सके। भला इस मनहूस वातावरण में बैठ कर मैं क्या करता। लिहाजा डब्बे से निकल आया। और प्लेटफार्म पर खड़ा होकर सोचने लगा—अब कहाँ बैठूं?

—नई दुनियाँ

पाठकों का पृष्ठ

[आचार्य रविशंकर विजयशंकर पांडे, सूरत]

गत मास जब मैं अखंडज्योति कार्यालय में माननीय शर्माजी से मिलने गया था, तो वहाँ ज्ञान प्रचार की दिशा में मुझे बहुत काम होते हुए दिखाई पड़ा। सम्पादक जी कुछ गिने चुने महानुभावों के आध्यात्मिक उपदेशों को अनेकानेक ग्रन्थों में से संकलित कर रहे थे। यह आध्यात्मिक संदेश इतनी मिठास भरी हुई और हृदयस्पर्शी भाषा में नवीन ढंग से लिखे जारहे थे कि इनकी एक पंक्ति पढ़ते ही पूरे लेखों को पढ़े बिना चैन नहीं पड़ता था। **समर्थ गुरु रामदास, ऋषि तिरुवल्लुवर, महात्मा बुद्ध, महात्मा महावीर, गुरुनानक, महर्षि दयानन्द, जेम्स ऐलन,** आदि ऋषियों के वचन प्रसंगों के अनुसार अध्यायों के रूप में लिखे जारहे थे। इसी प्रकार वेद, कुरान और बाइबिल के धर्मोपदेशों की बड़ी ललित लेख मालऐं तैयार हो रही थीं। हृदय के तारों को झंकृत कर देने वाली ऐसी अनूठी पाठ्य सामिग्री मैंने अबतक हजारों लाखों पुस्तकें पढ़ कर भी प्राप्त नहीं की थी। इन्हें पढ़ते पढ़ते मैं आनन्द बिभोर हो जाता था। दो रोज ठहरने के लिये गया था, परन्तु शर्मा जी की हस्तलिखित कृतियाँ पढ़ने के लिये एक सप्ताह ठहरना पड़ा। चलते समय मैंने पूछा कि यह महापुरुषों के दिव्य सन्देश कब तक छप जायँगे, तो शर्मा जी का चहरा उदास होगया। मैं समझ गया कि अखंड ज्योति के घाटे में यह अपना बहुत पैसा दे चुके हैं, जिन सोलह पुस्तकों का विज्ञापन किया था, उनमें से केवल आठ ही छपी हैं। ऐसी दशा में इन पुस्तकों के अमृत रस से अपना हृदय तृप्त करने में जिज्ञासुओं को बहुत दिन तक वंचित रहना पड़ेगा। यह महापुरुषों के अमृत वचनों की पुस्तकें कब तक छपेंगी? इस प्रश्न का उत्तर मौन में मिला, तो मैंने समझ कि इसका कारण सम्पादक जी की आर्थिक असमर्थता है।

कितने दुख की बात है कि इस देश में धर्म के नाम पर रुपया पानी की तरह बहाया जाता है धनी लोग अन्यान्य कार्यों मे बड़ी सी धन राशि दान करते हैं, परन्तु सद्ज्ञान के प्रचारार्थ, उत्तम ग्रन्थों को प्रकाशित करने के लिये, किसी का ध्यान नहीं जाता। इसके दो ही कारण हो सकते हैं, एक तो सम्पादक जी का किसी से न कहने का संकोचशील स्वभाव, दूसरा लोगों की अनभिज्ञता। अखंड ज्योति परिवार के महानुभावों की उदारता, धर्म निष्ठा और सच्चे कार्य में मदद करने की विवेक बुद्धि में मेरा विश्वास है। उनमें बहुत से ऐसे महानुभाव होंगे जो महापुरुषों के वचनों की एक एक पुस्तक प्रकाशित कराने का खर्च अपने पास से दें इससे पुस्तकें जिज्ञासुओं के सामने आवेंगी और उनकी बिक्री से अखंड ज्योति का घाटा पूरा होता रहेगा। यह पुस्तकें करीब ५०—५० पृष्ठ की हैं छपाने वाले का चित्र भी उस पुस्तक में रहेगा। मैंने हिसाब लगाया तो हर पुस्तक पर कोई ४५) या ५०) की लागत चित्र खर्च समेत बैठती है। अखण्ड ज्योति के प्रेमियों से जोरदार प्रार्थना है कि जिन्हें ईश्वर प्रेरणा करे वे एक पुस्तक का खर्च स्वयं देसकें तो स्वयं, अन्यथा कई मित्र मिल कर इकट्ठा करें। और जिस महापुरुष की नीति से प्रेम हो उनके अभिवचनों की एक पुस्तक प्रकाशित करादें साथ ही प्रकाशित कराने वाले महानुभाव अपना चित्र उस पुस्तक में छपाने के लिये अपना फोटो भी भेजदें। ज्ञान प्रचार कार्य में यह सहयोग करना मेरी दृष्टि में एक अनूठा पुण्य है। यह गंगा में जौ बोने के समान है जिसका फल दाता को तब तक मिलता रहेगा जब तक उसके बीज बीज उगते रहेंगे। साथ ही इसमें कीर्ति और यश भी पर्याप्त है

देखते हैं-ईश्वर है।

(महामना पं० मदनमोहन मालवीय)

हमारे सामने जन्म से लेकर शरीर छूटने के समय तक बड़े-बड़े चित्र-विचित्र दृश्य दिखाई देते हैं जो हमारे मनमें इस बात के जानने की बड़ी उत्कण्ठा उत्पन्न करते हैं वे कैसे उपजते हैं और कैसे विलीन होते हैं ? हम प्रति दिन देखते हैं कि प्रातः काल पौ॰फट होते ही सहस्र किरणों से विभूषित सूर्य मण्डल पूर्व दिशा में प्रकट होता है और आकाश-मार्ग से विचरता, सारे जगत को प्रकाश, गर्मी और जोवन पहुँचाता, सायंकाल पश्चिम दिशामें पहुंच कर नेत्र पथसे परे हो जाता है गणित शास्त्र के जानने वालों ने गणनाकर यह निश्चय किया है कि यह सूर्य पृथ्वो से नौ करोड़ अट्ठाईस लाख तीस सहस्र मीलकी दूरी पर है। यह कितने आश्चर्य की की बात है कि यह इतनी दूरी से इस पृथ्वी के सब प्राणियों को प्रकाश, गर्मी और जीवन पहुँचाता है ! ऋतु-ऋतुमें अपनी सहस्र किरणों से पृथ्वी के जल को खींचकर सूर्य आकाश में ले जाता है और वहां से मेघ का रूप बनकर फिर जलको पृथ्वी पर बरसा देता है और उसके द्वारा सब घास, पत्ती, वृक्ष, अनेक प्रकार के अन्न और धान तथा समस्त जीव धारियों को प्राण और जीवन देता है। गणित शास्त्र बतलाता है कि जैसा यह एक सूर्य है ऐसे असंख्य और हैं और इससे बहुत बड़े बड़े भी हैं जो सूर्य से भी अधिक दूर होने के कारण हमको छोटे-छोटे तारों के समान दिखाई देते हैं। सूर्य के अन्त होने पर प्रति दिन हमको आकाश में अनिगिनती तारे-नक्षत्र ग्रह चमकते दिखाई देते हैं। सारे जगत् को अपनी किरणों से सुख देने वाला चन्द्रमा अपनी शीतल चाँदनी से रात्रिको ज्योतिष्मती करता हुआ आकाश में सूर्य के समान पूर्व दिशा से पश्चिम दिशा को जाता है। प्रतिदिन रात्रि के आते ही दशों दिशाओं को प्रकाश करती हुई नक्षत्र-तारा-ग्रहों की ज्योति ऐसी शोभा धारण करती है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। ये सब तारा-ग्रह सूत्र में बंधे हुए गोलकों के समान अलंघनीय नियमों के अनुसार दिन से दिन, महीने से महीने, वर्ष से वर्ष, बंधे हुए मार्गों में चलते हुए आकाश में घूमते दिखाई देते है। यह प्रत्यक्ष है कि गर्मी की ऋतु में यदि सूर्य तीव्र रूप से नहीं तपता तो वर्षा काल में वर्षा अच्छी नहीं होती, यह भी प्रत्यक्ष है कि यदि वर्षा न हो तो जगत् में प्राणीमात्र के भोजन के लिये अन्न और फल न हों। इससे हमको स्पष्ट दिखाई देता है कि अनेक प्रकार के अन्न और फल द्वारा सारे जगत् के प्राणियों के भोजन का प्रबन्ध मरीचिमाली सूर्य के द्वारा हो रहा है। क्या यह प्रबन्ध किसी विवेक वती शक्ति का रचा हुआ है जिसको स्थावर-जंगम सब प्राणियों को जन्म देना और पालना अभीष्ट है अथवा यह केवल जड़ पदार्थों के अचानक संयोग मात्र का परिणाम है ? क्या यह परम आश्चर्य मय गोलक मण्डल अपने आप पदार्थों के एक दूसरे के खींचने के नियम मात्र से उत्पन्न हुआ है और अपने आप आकाश में वर्ष से वर्ष सदी से सदी, युग से युग घूम रहा है, अथवा इसके रचने और नियम से चलाने में किसी चैतन्य शक्तिका हाथ है ? बुद्धि कहती है कि 'है', वेद भी कहते हैं कि सूर्य और चन्द्रमा को आकाश और पृथ्वी को परमात्मा ने रचा। गीतामें स्वयं भगवान्का वचनहै-वही पंडित है जो विनाश होते हुए मनुष्यों के बीच में, विनाश न होते हुए सब जीव धारियों में बैठे हुए परमेश्वर को देखता है।

सब ज्योतिषों की वह ज्योति, समस्त अन्धकार के परे चमकता हुआ, ज्ञान स्वरूप, जानने के योग्य जो ज्ञान से पहचाना जाता है, ऐसा वह परमात्मा सबका सुहृद्, सब प्राणियों के हृदय में बैठा है।

ऐसे घट-घट व्यापक उस एक परमात्मा की मनुष्य मात्रको विमल भक्ति के साथ उपासना करनी चाहिये और यह ध्यान कर कि वह प्राणिमात्र में व्याप्त है हमें प्राणी मात्र से प्रेम करना चाहिए।